उपयोग के लिए स्वीकृत

पौष २०११ वर्ष ४ अङ्क ११-१२

४ रु० वार्षिक मूल्य

६ आ० एक प्रति का

सम्पादक
प्रो० विश्वानन्द एम.ए., बी.एल.
कोशी कालेज, खगड़िया.

शान्ति-सन्देश

सन्त साधना और जीवन निर्माण का आध्यात्मिक मासिक पत्र

सत्सङ्गियों से

धर्मानुरागी सत्सङ्गी महाशय गण !

शान्ति-सन्देश का प्रकाशन कुछ काल के लिये आर्थिक कठिनाई के कारण स्थगित करना पड़ा, इसका मुझे बड़ा दुःख हुआ।

मैं नहीं चाहता कि शान्ति-सन्देश ऐसा उपयोगी मासिक-पत्र बन्द हो। इस पत्र ने सन्तमत सत्सङ्ग की बड़ी सेवा की है। अतः मैं सब सत्सङ्गी भाइयों तथा आध्यात्मिक रूचि के लोगों से अनुरोध करूंगा कि वे इस पत्र के ग्राहक बनें तथा इस लाभदायक पत्र को बन्द न होने दें।

परमपिता परमात्मा से मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि शान्ति-सन्देश का नवीन वर्ष मङ्गलमय हो और सत्सङ्गीगण इससे अधिक लाभ उठावें।

—मेंहीं

विषय-सूची

	विषय	लेखक	पृष्ठ
१	चेतावनी	सन्त पलटू दास जी	१
२	अपनी बात	सम्पादकीय	२
३	सत्सङ्गसुधा	स्वामी मेंहीं दास जी महराज	४
४	स्वामी श्री मेंही दास जी महाराज का प्रवचन		७
५	प्रकाश-पुत्र	नवनीत से साभार	९
६	आपको भी मानसिक स्फूर्ति मिल सकती है	प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए०	२७
७	आत्मोयता का विस्तार करिये	श्री अगर चन्द्र नाहटा	३०
८	ईश्वर का संसार दुखी क्यों ?	श्री विश्वामित्र वर्मा	३३
९	कबीर के राम	प्रो० रत्नचन्द्र शर्मा	३५
१०	नाम जप या कीर्त्तन की विधि	श्री राम लाल पहाड़ा	३८
११	सच्चे योगियों की पहिचान	श्री रामवरण सिंह "सारथी"	४०
१२	शांति के साधन	साधु वेष में एक पथिक	४३
१३	ग्राहकों से	सम्पादक	४४

बिहार-राज्य द्वारा स्कूल, शिक्षण संस्थाओं तथा पुस्तकालयों के उपयोग के लिए स्वीकृत

शान्ति-मंदिर

पूर्णाङ्क ४८ | नवम्बर, दिसम्बर १९५४, अगहन-पौष २०११ | वर्ष ४ अङ्क ११-१२

चेतावनी

(सन्त पलटू दास जी)

धूआं का धौरेहरा ज्यों बालू की भीत।
ज्यों बालू की भीत ताहि को कौन भरोसा।
ज्यों पका फल डारि गिरत से लगै न दोसा।
कच्चे घड़े ज्यों नीर पानी के बीच बतासा।
दारु भीतर अगिनि जिवन की ऐसी आसा।
पलटू नरतन जात है घास के ऊपर सीत।
धूआं का धौरेहरा ज्यों बालू की भीत॥

(२)

ज्यों ज्यों सूखे ताल हैं त्यों त्यों मीन मलीन।
त्यों त्यों मीन मलीन जेठ में सूख्यों पानी!
तीनों पन गये बीति भजन का मरम न जानी।
कम्बल गये कुम्हिलाय हंस ने किया पयाना।
मीन लिया कोउ मारि ठाँव ढेला बिहराना॥
ऐसी मानुष देह वृथा में जात अनारी।
भूला कौल करार आप से काम बिगारी।
पलटू बरस औ मास दिन पहर घड़ी पलछीन।
ज्यों ज्यों सूखे ताल हैं त्यों त्यों मीन मलीन।

सम्पादकीय :

अपनी बात

इस अङ्क के साथ शांति-सन्देश का चौथा वर्ष समाप्त हो गया। इस अवसर पर परमपिता परमात्मा को धन्यवाद देते हैं कि जिनकी अनुकम्पा से हमें आज यह दिन देखने को मिला है। अपने सद्गुरु श्री स्वामी मेंहीं दास जी के हम हृदय से आभारी हैं जिन्होंने शान्ति - सन्देश के सञ्चालन में अपने विचार तथा आशीर्वाद से सहायता की है। हम अपने लेखकों को तथा ग्राहकों को तथा पाठकों के कृतज्ञ हैं जिन्होंने शान्ति-सन्देश का अपनाकर मुझे अनुगृहीत किया है।

शान्ति-सन्देश का प्रकाशन कुछ काल के लिये स्थगित करना पड़ा। इसका कारण आर्थिक कठिनाई थी; साथ ही कुछ लोगों का कहना था कि शान्ति सन्देश का वर्ष जो सितम्बर से आरम्भ होता है उसे जनवरी से आरम्भ कर दिया जाय। इस कारण से यह अङ्क हमने दो महीने का एक साथ निकाल दिया है। हम इसमें मुरादाबाद वार्षिक सत्सङ्ग के सम्पूर्ण प्रवचन तथा सन्त शिरोमणि बाबा देवी साहब जी का जीवन चरित्र तथा सन्तमत सत्सङ्ग आश्रम मुरादाबाद का इतिहास आदि देना चाहते थे। लेकिन कई सामग्री समय पर नहीं मिल सकी। अतः मन की बात मन में रह गयी। करीब-करीब सब ग्राहकों का वार्षिक चन्दा इस अङ्क से समाप्त हो जाता है उन्हें आगामी वर्ष का चन्द शीघ्र भेजना चाहिए।

शान्ति-सन्देश के प्रकाशन स्थगित करने पर अधिकांश सत्सङ्गियों ने पत्र भेजा कि शान्ति-सन्देश बन्द नहीं कीजिए तथा मुरादाबाद सत्सङ्ग में लोगों ने कहा कि इसे चलते रहने दीजिए। स्वयं हमलोगों के सद्गुरु श्री स्वामी मेंहीं दास जी महाराज ने भी कहा कि इसका प्रकाशन स्थगित न हो। अतः मैं सब सत्सङ्गियों से प्रार्थना करूंगा कि वे इसके ग्राहक अवश्य बन जांय।

इस वर्ष ऐसा हुआ कि वार्षिक मूल्य समाप्त होने पर भी ग्राहकों को वी० पी० द्वारा शान्ति-सन्देश नहीं भेजा गया। आशा थी कि सब लोग इस वर्ष भी रुपया भेज देंगे या ग्राहक बना रहना नहीं पसन्द होगा तो पत्र भेज ग्राहक सूची से नाम कटवा लेंगे। लेकिन अभी तक बहुत से ग्राहकों ने रुपया नहीं भेजा है उनकी सूची इस अङ्क में प्रकाशित की जा रही है। साथ ही उन्हें यह अङ्क भी भेजा रहा है। उन्हें चाहिए कि चतुर्थ वर्ष तथा पञ्चम वर्ष का वार्षिक मूल्य एक साथ भेज दें या कम से कम चतुर्थ का अवश्य भेज दें। बहुत से ग्राहकों ने ९ अङ्क प्राप्त करने के बाद अपना नाम ग्राहक सूची से कटवाया है। उन्हें भी जहां तक अंक मिले उनका दाम वे दे दें। इतना करने से इस वर्ष का घाटा पूरा हो जायगा।

शान्ति-सन्देश कोष

शान्ति - सन्देश जब पहले प्रारम्भ हुआ था तो प्रथम वर्ष वार्षिक मूल्य के अतिरिक्त भी कुछ रुपये वार्षिक सत्संग के समय में शान्ति-सन्देश कोष में ग्राहकों ने दिये थे। इससे शान्ति-सन्देश का घाटा पूरा हो जाता था। लेकिन तीन वर्षों से इस कोष में रुपये नाम मात्र को आये। मैं सत्संगियों से प्रार्थना करता हूँ कि वे इस कोष में दान दें। जो चार रुपये वार्षिक मूल्य देकर ग्राहक नहीं बन सकते हों वे भी कुछ रुपये या आने देकर इस कोष की सहायता कर सकते हैं। दाता का नाम शान्ति-सन्देश में प्रकाशित कर दिया जाता है।

मुरादाबाद-सत्संग

ता० १०, ११, १२ अक्टूबर १९५४ को तीन दिनों तक सन्तमत सत्संग आश्रम मुरादाबाद ने धूम धाम से सत्संग किया गया। इस सत्संग में बिहार प्रान्त से लगभग पांच सौ सत्संगी गये होंगे। बाहर से जितने भी सत्संगी आये हुए थे उनको मुरादाबाद के सत्संगियों ने अपनी ओर से दोनों शाम भोजन करवाया। रहने सहने की व्यवस्था बड़ी सुन्दर थी। वहाँ के सत्संगियों का उत्साह अपूर्व था। किसी को किसी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ।

भंगहा विशेषाधिवेशन

भंगहा का विशेषाधिवेपन इस साल का विशेषाधिवेशन भंगहा ग्राम में काढ़ागोला १९५४ फाल्गुन वदी ६, ७, ८ को होगा! क्योंकि इस बार का वार्षिक सत्संग प्रान्त से बाहर हुआ था और अधिकांश सत्संगी वहाँ जा नहीं सके थे अतः इस बार विशेषाधिवेशन वार्षिक सत्संगों का रुप धारण करेगा। यहाँ तीन दिनों तक सत्संग होगा। सब लोगों को यहाँ आना चाहिए।

आगामी वार्षिक सत्संग

मुरादाबाद के वार्षिक सत्संग में यह निश्चय किया गया है कि आगामी वार्षिक अधिवेशन मनिहारी में हो। इस की तिथि है ता० ४-५-६ मार्च १९५६ फालगुन वदी ८, ९, १० सवत् २०१२। इस तारीख को अभी से आप अपने ध्यान में रक्खें।

अगामी विशेषाधिवेशन

अभी तक विशेषाधिवेशन के स्थान और तिथि का निर्णय नहीं हुआ। साल में दो बार सत्संग में जाने से मन का दो बार परिस्कार हो जाता है। अतः विशेषाधिवेशन का क्रम टूटना नहीं चाहिए। बहुत से सत्संगीगण विशेषाधिवेशन को निमंत्रित करने में संकोच करते हैं। यह उचित नहीं है। संकोच छोड़ कर विशेषाधिवेशन की मांग कीजिए और सत्संग का क्रम टूटने नहीं दीजिए। सत्संग में होने वाले खर्च को कम कीजिए और सत्संग को होने दीजिए।

आध्यात्मिक सत्संग में अधिक आडम्बर की आवश्यकता नहीं है। आशा है इस बार भंगहा के सत्संग में संत्सगी गण विशेषाधिवेशन को निमंत्रित करने के लिये तैयारी होकर आवेंगे। ●

वार्षिक सत्संग के प्रवचन

(मुरादाबाद १०-१०-५४ प्रातः)

● स्वामी मेंहीं दास जी महाराज ●

धर्म्मानुरागिनी प्यारी जनता !

जैसे प्रत्येक जाप करने की माला में सुमेरु होता है वैसे ही संसार में सुमेरु पर्वत सबसे ऊँचा है। उसी तरह धर्मों में सुमेरु ईश्वर की मान्यता है। ईश्वर की मान्यता को हटा दो तो धर्म उथल-पुथल हो जायगा। धर्म मिट जायगा। किसी भी धर्म में जहाँ ईश्वर की मान्यता नहीं है वहाँ धर्म भाव अवश्य डगमग रहेगा। सन्तों में उसकी मान्यता बहुत बड़ी है। सन्त कबीर साहब कहते हैं—

"संगत ही जरिजाय न चरचा नाम की।
दूलह बिना बरात किस काम की॥"

ईश्वर की मान्यता को केवल कहा ही नहीं है कि मान लो और बुद्धि से कुछ काम मत लो। बुद्धिगम्य बात यह है कि सोचने विचारने वाले जान सकते हैं और निर्णय कर सकते हैं कि इस विश्व का आदि तत्त्व अवश्य है। वह आदि तत्त्व ऐसा नहीं कि थोड़ा ही हो, व्यापक न हो। जो व्यापक नहीं होगा थोड़ा ही होगा अपना तल थोड़ी दूर में समाप्त कर लेता है। तो दूसरे कहेंगे कि उस तल के बाद में क्या है? इस प्रकार कमसमझी के साथ सन्तों ने नहीं कहा है। उन्होंने कहा है जैसे संत बाबा नानक के वचनों में है—

"अलख अपार अगम अगोचरि ना तिसु काल न करमा।"

अपार शब्द का व्यवहार किया। उपनिषद् वाक्यों में भी है—

"वायुर्य थैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रति रूपो बभूव।
एकस्तथा सर्व भूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रति रूपो बहिश्च॥"

—कठोपनिषद्

वह ऐसा है जैसा वायु प्रत्येक के अंदर भी है और बाहर भी है। सबके अंदर और सबके बाहर के तत्त्व पर सोचने से अपार तत्त्व हो जाता है। वह आदि तत्व अनादि अनन्त है। ऐसा विचार में भी निर्णय होता है। जो स्वरूपतः अनादि अपरिमित है तो उसकी शक्ति भी अपार अपरिमित हो तो क्या सन्देह है! अपरिमित शक्ति युक्त आदि और अनादि भी।

सबसे पहले का इसलिए आदि और उसका कहीं भी और कभी की आदि नहीं इसलिये अनादि। उसको सर्वेश्वर कुल्ल मालिक मानते हैं। इस ईश्वर का ज्ञान देते हुए सन्तों ने कहा कि उसका दर्शन आँख से नहीं कर सकते। उसे हाथ से नहीं पकड़ सकते। वह इन्द्रियों के ज्ञान से परे है इसलिए 'अगम अगोचर' शब्द कहा। वह कह कर उन्होंने कहा— तुम अपने शरीर और इन्द्रियों से भिन्न पदार्थ अपने शरीर के अन्दर रहते हो। इन्द्रियों को छोड़कर तुम क्या कर सकते हो, क्या पहचान सकते हो, इसको नहीं जानते हो। तुम्हारा काम ईश्वर की पहचान करना है। इन्द्रियों से ईश्वर की पहचान करना चाहो तो यह ज्ञान अपूर्ण है प्रेममय गाना को गाना, उसके विचार में तल्लीन होना, केवल इतना ही बस नहीं है। आत्मज्ञान को विचार से विचार लो, सुनलो, समझलो, किन्तु कहोगे कि पहचान नहीं हुआ। जाना किन्तु पहचान नहीं। तुलसी साहब का आदेश है—

"हिय नैन सैन सुचैन सुन्दरि साजि श्रुति पिउपै चली"

पिय पास चलो। चलने के लिए अन्तर दृष्टि का सहारा लो। सहारा कैसे लिया जाय? केवल ख्याली पोलाव नहीं है, जिससे पेट नहीं भरता यह कैसे होता है? यह गुरु गम्य है। जैसे कोई महिला अपने रूप को बनाती है और पति से मिलने जाती है, उसी प्रकार जीवात्मा अपने को अन्तर्दृष्टि से सजाकर ईश्वर से मिलने के लिए जाती है और इसकी युक्ति गुरु से प्राप्त होती है। अन्न अन्न कितना हू कहो किन्तु भोजन किये पेट नहीं भरता। इसी तरह ज्ञान की बातें कितनी ही कहो, इससे ज्ञान के पद तक पहुंचा नहीं जाता और न सन्तुष्टी होती है। 'जो ईश्वर सर्वव्यापी है उसको पहचानने के लिये कहीं जाने की जरूरत नहीं' यदि ऐसा कोई कहे तो वे सज्जन अपने हृदय पर हाथ रख कर कहें 'सर्वेश्वर-सर्वेश्वर कहते कहते कभी उनको प्रत्यक्ष हुआ'? मिट्टी में पानी अवश्य है किंतु बिना खोदे नहीं मिलता। मिट्टी खोदते—खोदते पानी तक जाओ तभी पानी पाओगे। उसी तरह तुम अपने अन्दर धंसो तो सर्वेश्वर को पाओगे। इसी को 'सब क्षेत्र क्षर अपरा पर औरु अक्षर पार में। निर्गुण सगुण के पार में.........॥' वाले भजन में कहा गया है। किसी सज्जन ने मुझसे कहा—'सब पार में ही है, इधर नहीं है?' मैंने कहा—'इधर भी है किन्तु उसे पहचान नहीं सकते। उधर अर्थात् मायिक आवरणों से पार जाकर ही पहचान करेंगे।' ईश्वर को पार नहीं किया जाता। सृष्टि के तत्त्वों को जिधर पार करो (उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम) उधर ही ईश्वर मिल जायँगे' इन तत्त्वों को पार करना ही कठिन मसला है। मेरे सामने सृष्टि के तत्त्व हमेशा रहते हैं। इसीलिये उपनिषद् में है जिस इस (देशकालावच्छिन्न वस्तु) की लोक उपासना करता है, वह ब्रह्म नहीं है।

"यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।
तदेव ब्रह्मत्वं विद्धिनेदं यदि दमुपासते ॥५॥"

—केनोपनिषद्

यह जो भूतल है, एक महान टापू है। कई महा देश हैं, सब मिलाकर महान टापू है। इन सबको

जिधर पार करो. उधर ही जल है। उसी तरह सृष्टि के तत्त्वों को जिधर पार करो, उधर ही ईश्वर है। ईश्वर का स्वरूप और उसका ज्ञान ऐसा देकर सन्तों ने कहा है—ईश्वर का भजन करो। भजन वही है जिससे सृष्टि के सब तत्त्वों को पाकर ईश्वर की पहचान जा सके। इसी को हमलोग समझते, सोचते और विचारते हैं। मायिक तत्वों से ही मनुष्य पिण्ड बना है। जिसमें सतगुरु बाबा देवी साहब ने चौदह दर्जे बताये हैं। मूलाधार से आज्ञाचक्र तक छः और उसके ऊपर आठ दर्जे मानते हैं। इन चौदहों दर्जे में आप चलें तो धर्म की सच्चाई नापने में आ जायगी। उन्होंने कोई खास किताब नहीं लिखी। तुलसी साहब की घटरामायण को उन्होंने छपवायी, उसी की भूमिका में यह लिखा है। हमलोगों को चाहिए कि ईश्वर की उपासना अन्तर्मुखी होकर करें। उपनिषद् में बड़ा अच्छा लिखा हैं—

'ना विरतो दुश्चरितान्माशान्तो ना समाहितः ।
ना शान्त मानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥'
—कठोपनिषद्

जो पापकर्मों से निवृत नहीं हुआ है, जिसकी इन्द्रियां शान्त नहीं है और जिसका चित्त असमाहित या अशान्तहै वह इसे आत्मज्ञान द्वारा प्राप्त नहीं कर सकता है। पाप करने वाला विषयों में लसका हुआ रहता है। जो अपने को पापों से छुड़ावे, वही उसको पा सकता है। पापों से छूटने के लिए सन्तों ने कहा है—झूठ, चोरी, निशा, हिंसा और व्यभिचार मत करो। इससे छूटने की ताकत आपमें तब होगी जब आप इससे बचने के लिए कोशिश करेंगे और आप की चढ़ाई ऊपर होगी। इन दोनों प्रकारों की कोशिश होनी चाहिये। इस लिये 'लाभ का तेल सुरत की बाती, ब्रह्म अगिन उदभारू रे।' आँख बन्द कर देखो और सोचो कि मैं कहां हूँ ? आप को उत्तर आवेगा–मैं अन्धकार में हूँ इसमें क्या मिलेगा ? अन्धकार में क्या मिलेगा ? भगवान बुद्ध ने कहा—'अन्धकारेन ओनद्धा प्रदीप न गवेस्सथ।' अन्धकार में पड़े तुम प्रदीप की खोज क्यों नहीं करते ? कोई कहे मैं तो विद्वान हूँ, मैं अन्धकार में कहाँ हूँ ? तो आप आँख बन्द कर देखिये अन्धकार मिलेगा। आपके अन्दर प्रकाश का तल भी है। अन्धकार के तल को पार कीजिये, फिर प्रकाश का तल मिलेगा। तब 'जगमग होत निहारु मन में' सन्त कबीर साहब की वाणी चरितार्थ होगी। यह कोई गप बात नहीं है। अभ्यास कीजिये, प्रत्यक्ष होगा। ●

अज्ञान

किसी विषय को जब मनुष्य नहीं समझता तो उससे डरता है। अन्धेरी कोठरी में जाने से पहले जिस प्रकार भय लगता है, वैसे ही किसी काम में अनभिज्ञ होने पर उसको करने में डर लगता है। प्रकाश से भय स्वभावतः नष्ट हो जाता है, वह चाहे सूर्य-प्रकाश हो या आत्म-प्रकाश अथवा ज्ञान-प्रकाश। ●

स्वामी श्री में हीं दास जी महाराज का प्रवचन

११-१०-१९५४ ई० प्रातःकाल

प्यारी धर्मानुरागिनी जनता !

हमलोग सन्तों की तारीफ में गाते हैं 'बिन्दुध्यान विधि नादध्यान विधि सरल-सरल जग में उपचारी।' बिन्दु ध्यान और नादध्यान बतलाने वाले सन्त होते हैं। यह सरल साधन है। वैसे तो सरल से सरल या मोटा से मोटा काम भी अभ्यास नहीं होने के कारण कठिन जान पड़ता है। "जो जेहि कला कुशलता कहँ सोइ सुलभ सदा सुखकारी। सफरी सन्मुख जल प्रवाह सुरसरी बहइ गज भारी ॥

ज्यों सर्करा मिलइ सिकता महँ, बलतें नहिं बिलगावै।
अति रसज्ञ सूछम पंपीलिका, बिनु प्रयास ही पावै ॥
सकल दृश्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि योगी।
सोइ हरि पद अनुभवइ परम सुख, अतिशय द्वैत वियोगी ॥
शोक मोह भय हरष दिवस निशि, देश काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास यहि दशा हीन, संशय निर्मूल न जाहीं ॥"

संशयों को निर्मूल करने के लिए बिन्दुध्यान और नादध्यान है। बिन्दु और नाद ध्यान के लिए ध्यान बिन्दुपनिषद् में है —

"बीजाक्षरं परं बिन्दुं नादं तस्योपरिस्थितम्।
सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम् ॥"

परम बिन्दु कहने का मतलब क्या है ? एक छोटा से छोटा चिह्न को बाहर में अङ्कित कर उसे बिन्दु कहते हैं। किन्तु परिभाषा पढ़ने पर कहते हैं उसका विभाग नहीं होता। किन्तु छोटा चिन्ह कीजिये फिर भी उसका विभाग होगा। परम बिन्दु बाहर में अङ्कित नहीं किया जा सकता। पतली से पतली कोई भी नोंक बिन्दु अङ्कित करने के योग्य नहीं। परम बिन्दु से स्थूल में कोई स्थान छेका नहीं जा सकता। बाहर में उसको अंकित करना असम्भव है। आप अपनी दृष्टि की नोंक से अपने अन्दर के प्रथम तल पर उसे अंकित कर सकते हैं। अङ्कित करने का अर्थ है— प्रथम पट पर दृष्टि की नोंक रखिये स्वयं परम बिन्दु उदय हो जायगा। जैसे पेन्सिल की नोंक जहाँ रखते हैं, वहाँ स्वतः बिन्दु उत्पन्न हो जाता है। इसका विभाग हो सकेगा परन्तु परम बिन्दु अर्थात् परिभाषा के अनुकूल बिन्दु का विभाग नहीं होगा। कबीर साहब का कहना है कि— "स्याह सुफैद तिलो बिच तारा अविगत अलख रबी है।" पहले स्याह है फिर सुफैद हो जाता है वही तारा हो जाता है। बाबा नानक के बचन में भी है— "तारा चड़िया लंमा......।" तुलसी साहब का इसके लिए कथन है कि —

"श्याम कंज लीला गिरी सोई।
तिल परिमाण जान जन कोई ॥"

श्री मद्भगवद्गीता के आँठवें अध्याय के ९ श्लोक में अणोरणीयाम् कह कर परमात्म रूप का वर्णन है और मनुस्मृति के अध्याय १२ श्लोक १२२ में

भी अणु रूप परमात्म का ध्यान कहा गया है।

"कविं पुराणमनुशा सितारमणोरणीयां समनुस्मरेद्यः।
सर्वस्म धातारम चिंत्य रूपमादित्यवर्णं तमसःपरस्तात् ॥"
॥गीता अ० ८।९॥

"प्रशासितारं सर्वेषामणीयां समणोरपि।
रुक्माभं स्वप्न धी गम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम् ॥"
॥ मनुस्मृति अ० १२।१२२॥

बाहर विषयों का ध्यान छूटता है तब अन्दर का ध्यान होता हैं। बाहर विषयों के चिन्तन से मोटा ध्यान भी नहीं हो सकता है सूक्ष्म ध्यान कैसे कर सकता है। ध्यानाभ्यासी की वृत्ति पाप की ओर से हटी होती है। उससे पाप रहित कर्म होगा। जो पहले का किया हुआ है वह ध्यान योग से नष्ट हो जायगा। ध्यानाभ्यासी ध्यान बल से कर्म मण्डल से ऊपर उठ जाता है। इस तरह वह पाप-पुण्य दोनों से ऊपर उठ जाता है। उसे पाप और पुण्य वहां से लौट नहीं सकते। इसलिए उपनिषद् के वचन को विश्वास करना चाहिये। जितने भी अक्षर या दृश्य या रूप हैं, सबका बीज बिन्दु है कोई भी दृश्य या रूप बनाने के लिए पहले बिंदु बनता है। बिना बिंदु के कोई रूप नहीं बना सकते। जैसे बट के बीज के बिना बट का वृक्ष नहीं हो सकता उसी प्रकार समस्त आकार की उत्पत्ति बिन्दु से है और अन्त भी बिन्दु है। उस बिन्दु को जो प्राप्त करता है वह दृश्य जगत के शिखर पर चढ़ जाता है। इसीको ब्रह्म रन्ध्र से होकर ब्रह्माण्ड में जाना कहते हैं। रूप दृश्यमान् है। रस, जिभ्या से, गंध नाक से, शब्द कान से तथा स्पर्श छूने से आपको मालुम होता है। इन सबका रूप क्या है? गन्ध का क्या दृश्य है? इस प्रकार अदृश्य पदार्थ भी संसार में हैं। दृश्य का आरम्भ बिन्दुसे और अन्त बिन्दु पर होता है। और अदृश्य का आरम्भ किससे होता है? अदृश्य का आरम्भ शब्द से होता है। क्योंकि बिना गति या कम्प के ध्वनि नही हो सकती और ध्वनि के बिना कुछ हो नहीं सकता। ध्वनि कम्प या गति के साथ अवश्य होती है।

"साधो गति में अनहद बाजै।
झंझकार और झनक झनक है, एहि मन्दिर मे साजै ॥"
(दरिया साहब बिहारी)

जब तक शब्द रहेगा तब तक संसार रहेगा। जब शब्द को पार कर जाय तब संसार के पार पर पहुँच जाय। संसार का दूसरा हिस्सा अरूप है, वह नाद ध्यान से पार किया जायगा। शब्द में आकर्षण करने का गुण है।

"यही बड़ाई शब्द की जैसे चुम्बक भाय।
बिना शब्द नहिँ ऊबरै, केता करै उपाय ॥"(कबीर साहब)

"चुम्बक सत्तशब्द है भाई। चुम्बक शब्द लोक ले जाई ॥
लोह निकारि होखै नहिं पीरा। सत्त शब्द जो बसै शरीरा ॥'
(दरिया साहब बिहारी)

बिन्दु ध्यान की यह महिमा है कि उसके द्वारा रूप जगत से ऊपर उठ जायँगे और नाद ध्यान से अरूप जगत से ऊपर उठ जायँगे। कितने लोग कहते हैं शरीर के अन्दर अनेक रग-रेसे चलते हैं, उनकी ध्वनियाँ हैं, उनको सुनकर क्या होगा? मैं उनसे कहता हूँ कि अपनी वृत्ति को आप स्थूल मण्डल से ऊपर उठा लीजिये, तब सुनिये। उस समय आप की वृत्ति स्थूल में नहीं रहेगी तब आप स्थूल ध्वनियों को कैसे सुन

शेष पृष्ठ ३७ पर

Sahyadri Sch... PURNEA

प्रकाश-पुत्र

● आत्मा के श्रेय का मार्ग सिर्फ गिने-चुने व्यक्तियों के लिए ही नहीं है! प्रत्येक व्यक्ति इस पथ पर अग्रसर हो सकता है — और मनुष्य ही क्यों, भारतीय परम्परा में तो पशु-पक्षी एवं इतर क्षुद्रातिक्षुद्र प्राणी तक अपनी नियत योनि के प्राकृत तकाजों का पालन करते हुए आत्मा का श्रेय प्राप्त करते हैं। वेदों से लेकर श्रीमद्भागवत तक ऐसे उदाहरणों की अखंड शृङ्खला है। बुद्धकाल में शायद एकवर्गविशेष ने ही श्रेय-मार्ग पर एकाधिकार स्थापित कर लिया था। अतः बुद्ध को साधारणतिसाधारण व्यक्तियों तक आत्म-श्रेय के संदेश को पहुँचाना पड़ा और उनके सम्मुख यह प्रमाणित करना पड़ा कि, सामान्य-से-सामान्य व्यक्ति भी अपने नियत कर्मों को करता हुआ शांति, सुख और श्रेय प्राप्त कर सकता है। उनके 'आप्प दीपो भव' के मंत्रदान में इसी स्थापना का चरम उत्कर्ष है। नोबेल-पुरष्कार-विजेता श्री हरमन हेस का उपन्यास 'सिद्धार्थ' बुद्ध के इसी मंत्र पर आधारित है— अपने-आपको दीपक बनाकर ही ज्योति-स्वरूप बनाया जा सकता है। हम यहाँ इसी उपन्यास का संक्षिप्त हिन्दी रूपान्तर प्रकाशित कर रहे हैं। जिन पाठकों को यह संक्षिप्त रूप रुचे वे 'शांति-सन्देश' कार्यालय से इसकी पूरी पुस्तक 'सिद्धार्थ' मंगा सकते हैं। ●

उसका पिता प्रसन्नता से फूला नहीं समाता। उसकी तीक्ष्ण बुद्धि, शास्त्र-सम्मत, आचार-विचार, शील तथा ज्ञान-प्राप्ति का सतत प्रयास, ये सारी बातें उसके पिता के लिए गौरव का विषय थीं। उसका पिता उस दिन की अपनी रंगीन कल्पनाओं को सँजो रहा था, जब गांव के समस्त निवासी उसकी प्रतिभा और उसके ज्ञान के कायल होकर उसे अपना पथ-प्रदर्शक मान लेंगे!

उसकी माँ उसे देख-देख कर निहाल होती। उठने-बैठने, चलने-फिरने, उसके हर कार्य को देखकर उसकी माँ का जी चाहता कि, उसकी बलैया ले लें!

गाँव की युवा ब्राह्मण-कन्याओं के दिल बल्लियों उछलने लगते, जब वह गलियों से गुजरता। किवाड़ों की ओट से छिप-छिप कर वे उसे निहारतीं-अपलक!

और, गोविन्द-उसका बाल-सखा तो उसे सबसे अधिक प्यार करता-साये की तरह उसके पीछे लगा रहता; उसके पदचिह्नों पर ही चलने का प्रयास करता!

बाल, वृद्ध, युवक; सबका दुलारा वह, एक ब्राह्मण-कुमार था— एक अत्यन्त निष्ठावान ब्राह्मण-कुल का दीपक सिद्धार्थ!

लेकिन आश्चर्य की बात तो यह थी कि, गांव भर को अपने स्वभाव व सौजन्य से आनन्दित उल्लसित करते रहने वाला सिद्धार्थ स्वयं उदासी की गहराई में ही डूबा रहता! होठों पर हँसी बिखेरते रहने पर भी मन में दिन-रात चिंता व्याप्त

रहती। वह अपने भीतर एक प्रकार के असंतोष का अनुभव करता। वह यह अनुभव करने लगा था कि, पिता-माता का प्यार या गोविन्द का स्नेह उसे हमेशा प्रसन्न नहीं रख सकते– उसे जिस शांति और संतोष की खोज है, वह इन लोगों के प्यार-दुलार में नहीं मिल सकती। उसके भीतर यह शंका बलवती होने लगी थी कि, उसके विद्वान पिता, उसके अन्य शिक्षकों तथा धर्मनिष्ठ ब्राह्मणों ने अपने सारे ज्ञान का खजाना उस पर उड़ेल दिया है– उनके पास ऐसा कुछ शेष नहीं रहा, जो वे उसे दे सकें। और, इधर उसकी ज्ञान-पिपासा अतृप्त-की-अतृप्त ही है! उसका हृदय स्थिर नहीं रहता– उसकी आत्मा शांति नहीं अनुभव करती!

वेदों एवं उपनिषदों में कहा गया है– "तुम्हारी आत्मा ही समस्त विश्व है।" जब मनुष्य गहरी निद्रा में निमग्न होता है, तब उसकी आत्मा परमात्मा से साक्षात्कार करती है। वेदों और उपनिषदों में कितनी ज्ञान की बातें कही गयी हैं, कितना गूढ तत्व भरा है इनमें! न; ज्ञान के इस अतुल भंडार की– जिसमें पीढ़ी-दर-पीढ़ी के विद्वान अपनी सञ्चित बुद्धि का खजाना उड़ेलते आये हैं– प्राणपण से जिसकी वे रक्षा करते आये हैं- उपेक्षा नहीं की जा सकती! लेकिन वे ब्राह्मण, वे धर्मनिष्ठ एवं बुद्धिमान व्यक्ति अब कहाँ हैं, जिन्होंने परमात्मा के सम्बन्ध में सिर्फ जानकारी ही नहीं प्राप्त कर ली थी, वरन् उसका प्रत्यक्ष अनुभव भी किया था! कहाँ हैं वे निष्ठावान् व्यक्ति, जिन्होंने निद्रावस्था या जाग्रत अवस्था में, हर स्थान में, हर कार्य में परमात्मा का साक्षात्कार किया था......!

मैं बहुत से योग्य और आचारवान ब्राह्मणों को जानता हूँ। स्वयं मेरे पिता ही बड़े पवित्र विचारों के, विद्वान और आचार-विचार का पर्याप्त ध्यान रखने वाले हैं। उनका व्यवहार मानव-मात्र के साथ ही बड़ा शिष्ट और नम्रता से परिपूर्ण होता है। वे परम धार्मिक जीवन यापन करते हैं, दया-धर्म की बातें ही वे सदैव सोचा करते हैं। लेकिन वे– जो इतना सब-कुछ जानते हैं, इस प्रकार धर्म की उपासना में ही दिन-रात रहते हैं क्या स्वयं अपने जीवन में संतुष्ट हैं? क्या उन्होंने पूर्णता प्राप्त कर ली? क्या स्वयं उनमें भी अभी खोज की प्रवृत्ति नहीं है– कुछ पाने की इच्छा नहीं है? प्रति दिन क्या वे अपने अंतर में एक अतृप्त प्यास का अनुभव करते हुए होम, जप-तप नहीं करते; वेदों और उपनिषदों में बताये गये नियमों का पालन नहीं करते? वे, जो बिलकुल निष्कलङ्क जीवन बिताते हैं, प्रति दिन क्यों इस प्रकार अपना पाप धोते हैं, अपने-आपको शुद्ध करते हैं? और फिर, पाप भी कौन-सा? तो क्या उनके भीतर परमात्मा नहीं है? क्या उनकी आत्मा के भीतर परमात्मा का निवास नहीं?

मुक्ति के इस मार्ग को मनुष्य को अपने भीतर ही खोजना होगा-अपने भीतर ही पाना होगा! बाकी सारी वस्तुएँ तो मिथ्या हैं–नश्वर!

ये थे सिद्धार्थ के विचार, यही थी उसकी प्यास तथा उसकी उदासी का कारण भी यही था।

और तब, एक दिन–जब छाया की धूमिल छाया पृथ्वी पर उतर रही थी–सिद्धार्थ ने अपने बाल-सखा गोविन्द से कहा–"मित्र! तुम्हें उन योगियों की याद है न, जो कुछ दिनों पहले हमारे गावों में आये

थे !......मैंने भी अब योगी होने का निश्चय किया है। कल मेरे जीवन का नव प्रभात होगा-पौ फटने के पूर्व मैं सारी मोह माया त्याग कर, संसार से सम्बन्ध-विच्छेद कर, जंगलों में चला जाऊँगा-योगी बनने के लिए।"

गोविन्द ने अपने इस मित्र की ओर देखा, जिसकी महानता में उसका अटूट विश्वास था। वह जानता था कि, एक दिन समस्त विश्व सिद्धार्थ के आगे सिर झुकायगा और इसी से उसने अपनी जीवन डोर भी उसके जीवन के साथ बाँध दी थी-जहाँ सिद्धार्थ, वहीं गोविन्द !

शाम की लालिमा अब तक रात्रि की लालिमा में परिवर्तित हो चुकी थी। सिद्धार्थ ने अपने पिता के कमरे में प्रवेश किया और चुपचाप तबतक वहाँ खड़ा रहा, जब तक इसके पिता ने उसकी उपस्थिति स्वयं अनुभव नहीं कर ली। उसकी ओर मुड़ते हुए उसके पिता ने पूछा-"क्या है सिद्धार्थ ! तुम कुछ कहना चाहते हो ?"

सिद्धार्थ बड़ी विनम्रता से बोला-"पिता जी ! मैं आपको सिर्फ यह बतलाने आया था कि, कल प्रातःकाल मैं आपका यह घर छोड़कर जंगलों में जाना चाहता हूँ-योगी बनने के लिये। मुझे विश्वास है, आप सहर्ष इसको अनुमति दे देंगे।"

—२—

"गोविन्द !" भिक्षाटन के लिए जंगल से गाँव की ओर जाते हुए सिद्धार्थ ने पूछा-"तुम्हारा क्या विचार है ? क्या हमने कुछ प्रगति की है ? क्या हम अपने लक्ष्य तक पहुँच चुके हैं ?"

"पिछले कुछेक महीनों के भीतर हमने बहुत कुछ सीखा है मित्र !" गोविन्द ने विश्वास के स्वर में जवाब दिया-"और, अभी सोच भी रहे हैं ? तुम निश्चय ही एक महान योगी बनोगे, सिद्धार्थ ! तुमने सारी यौगिक क्रियाएँ बहुत जल्दी सीख लीं। वयोवृद्ध योगी भी बहुधा तुम्हारी प्रशंसा किया करते हैं। एक दिन तुम अवश्य ही अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लोगे।"

सिद्धार्थ मुस्कुराया-उपेक्षा की मुस्कान ! दृढ़ स्वर में बोला-"मुझे विश्वास नहीं होता। अब तक इन योगियों के संग रह कर मैंने जो कुछ सीखा है, उसे मैंने इससे भी कहीं जल्दी किसी सराय में, किसी वेश्या के घर-जुआड़ियों के बीच रहकर-सीख लिया होता।"

गोविन्द ने आश्चर्य-विस्फारित नेत्रों से अपने मित्र की ओर देखा-"तुम उपहास तो नहीं कर रहे मित्र ? भला जुआड़ियों की संगत में रहकर तुम यौगिक क्रियाएँ किस प्रकार सीख पाते-समाधिस्थ हो जाना, श्वास को इच्छानुसार रोक रखना, भूख और पीड़ा पर विजय-यह सब उनकी संगत में कैसे सम्भव हो सकता है ?"

सिद्धार्थ फिर मुस्कुराया-इस बार गोविन्द के भोलेपन पर-"मित्र ! यह समाधि लगाना क्या है ? जरा और गहराई में उतर कर सोचो गोविन्द ! यह और कुछ नहीं, स्वयं अपने आप से भागना है- जीवन की पीड़ाओं से, उतार चढ़ाव से घबड़ा कर उससे बच निकलने का अस्थायी प्रयास है। जुआड़ी या शराबी भी यही करता है। शराब के नशे में धुत होकर या पासे फेकने में तल्लिन होकर अपने-आप से दूर भाग खड़ा होता है- वह स्वयं को भी भूल जाता है-जीवन के अभाव उस वक्त उसे नहीं सताते। शराब की बोतल या जुए के पासे में

उसे वही प्राप्त होता है, जिसे सिद्धार्थ और गोविन्द महीनों की साधना के पश्चात् समाधि लगाकर, उपवासकर और श्वास रोककर प्राप्त करते हैं-स्वयं अपने-आप से बचाव !"

गोविन्द ने विरोध किया-" तुम्हारी बातें कुछ अशों में सही हैं सिद्धार्थ। मैं मानता हूँ कि, शराबी अपने-आप को भूलने में सफलता प्राप्त कर लेता है, जीवन की कटुताओं को भूल जाता है, पर थोड़ी देर के लिए ही! नशा टूटने के बाद सारी-की-सारी चीजें अपनी नग्न वास्तविकता में ही उसके सामने आ खड़ी होती हैं। कोई भी शराबी या जुआड़ी अपने आपको भूलने के लिए अपनाए गये साधन द्वारा बुद्धिमान नहीं हो जाता-उसे किसी ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती !"

सिद्धार्थ के चेहरे पर तीसरी बार मुस्कुराहट खेल गयी-"मैं यह तो नहीं जानता, गोविन्द; क्योंकि मैंने कभी शराब नहीं पी. कभी जुआ नहीं खेला। लेकिन इतना अवश्य जानता हूँ कि, इन यौगिक क्रियाओं में मैं भी थोड़ी देर के लिए ही-नग्न वास्तविकता से अपना बचाव कर लेता है। जहाँ तक ज्ञान का प्रश्न है, मुझे अपनी स्थिति एक गर्भस्थ शिशु से अधिक परिपक्व प्रतीत नहीं होती !"

"ऐसा न कहो, मित्र!" गोविन्द ने गहरी आस्था के स्वर में कहा-"हम मुक्तिमार्ग पर काफी आगे बढ़ चुके हैं।"

सिद्धार्थ ने सहसा ही कोई मंतव्य नहीं दिया। क्षणभर रुक कर अपने मित्र के चेहरे पर आँखें गड़ाते हुए दृढ़ स्वर में बोला-"गोविन्द ! शीघ्र ही तुम्हारा यह मित्र इन योगियों का साथ छोड़ देगा। उसे अपने ज्ञान की प्यास यहाँ बुझती नहीं दिखायी देती-वह अभी तक प्यासा है।"

गोविन्द ने कोई जवाब नहीं दिया। सिद्धार्थ भी चुप रहा। अपने अपने विचारों में मग्न दोनों के पाँव अपने लक्ष्य की ओर उठते गये, रास्ता कटता गया और ठीक उसी तरह एक-एक कर जीवन के तीन लम्बे वर्ष बीत चुके थे कि, एक समाचार सुनने में आया-गौतम नामक किसी व्यक्ति का आविर्भाव !

बुद्ध के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त करने वाले इस गौतम ने पीड़ाओं पर विजय प्राप्त कर ली थी। उसे निर्वाण मिल चुका था उसने मुक्ति का मार्ग खोज निकाला था। वह घूम-घूम कर लोगों को उपदेश देता, मुक्ति प्राप्त करने का मार्ग बतलाता। संन्यासियों का वस्त्र धारण किये वह अपने शिष्यों के बीच निवास करता। उसके मुख पर एक अपूर्व तेज झलकता था। बड़े बड़े धर्मनिष्ठ ब्राह्मण, राजा-महाराजा उसके आगे श्रद्धा से सिर झुकाते और सांसारिक मोह-माया का त्याग कर उसकी दीक्षा ग्रहण कर लेते।

भूख और अभाव से त्रस्त संसार के लिये ये समाचार बड़े आकर्षक प्रतीत हुए। जीवन की कठिनाइयों से ऊबे मनुष्यों को आशा की नई नई किरणें दिखाई देने लगीं। शीघ्र ही बुद्ध सर्वत्र चर्चा का विषय बन गये। शहर से होकर यह खबर जंगल में योगियों के बीच भी पहुँची।

इस तीन वर्षों की लम्बी अवधि के बीच गोविन्द की अटूट श्रद्धा पर भी अविश्वास की जड़ें पनपने लगी थीं। उसे भी यह अनुभव होने लगा था कि, वह इन योगियों के बीच रहकर कभी निर्वाण नहीं प्राप्त कर सकेगा। और, स्वभावतः इसके फल-

स्वरुप निर्वाण-प्राप्त बुद्ध के समाचार ने उस पर अत्यधिक प्रभाव डाला। बुद्ध के दर्शन करने तथा उनके उपदेश सुनने की इच्छा उसके दिल में जाग्रत हुई और धीरे धीरे यह इच्छा इतनी प्रवल हो गयी कि, उसने योगियों का साथ छोड़ बुद्ध के पास जाने का निश्चय-सा कर लिया।

सिद्धार्थ उसके ये विचार सुनकर मुस्कुराया- उदासी की मुस्कान। फिर कोमल स्वर में बोला "गोविन्द! तुम जानते हो कि इन उपदेशों पर से मेरा विश्वास हटता जा रहा है! लेकिन मैं तुम्हारे साथ बुद्ध के उपदेश सुनने अवश्य चलूँगा- योगियों का साथ मैं छोड़ दूँगा।"

—३—

ग्रीष्म की उस सुहावनी संध्या में, जब शिविर में लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गयी, बुद्ध उपदेश देने के लिए वहाँ आये। वे सांसारिक मोह-माया और पीड़ा से छुटकारा पाने के उपाय बता रहे थे। निर्वाण कैसे प्राप्त किया जा सकता है, यही उनके उपदेशों का मूल था। बड़ी स्थिरता के साथ, धीमी पर दृढ़ आवाज में वे बोल रहे थे।

हृदय में अपार श्रद्धा संजोये भीड़ ने बहुत ही शांति के साथ ध्यानपूर्वक उनका उपदेश सुना और बुद्ध जब अपना प्रवचन समाप्त कर चुके, लोगों ने उठकर बौद्ध धर्म की दीक्षा पाने की इच्छा प्रकट की। संकोची और दुर्बल मन गोविन्द भी जो सिर्फ आँख मूँद कर सिद्धार्थ के पीछे-पीछे चलना जानता था, उठकर खड़ा हो गया। भक्ति-विह्वल स्वर में उसने प्रार्थना की कि, बुद्ध उसे भी अपने शिष्यों में ले लें। लोगों की प्रार्थना स्वीकार कर ली गयी। निश्चित हुआ कि, प्रातःकाल उन्हें बौद्ध धर्म की दीक्षा दी जायगी।

रात्रि की निस्तब्धता में जब गोविन्द और सिद्धार्थ को परस्पर एकांत का अवसर मिला, तब गोविन्द ने बड़ी आतुरता-भरी वाणी में कहा- "सिद्धार्थ! तुम्हें कोई सलाह देना मेरी योग्यता के बाहर है। हम दोनों ने ही बुद्ध के प्रवचन सुने हैं। मैंने उन्हें सुना और उन्हें स्वीकार भी कर लिया। लेकिन मेरे मित्र! तुम्हें यह निवार्ण का मार्ग पसंद नहीं? तुम भी इस पथ पर आगे नहीं बढ़ोगे? क्या तुम और प्रतीक्षा करोगे?"

सिद्धार्थ जैसे गहरी नींद से जगा हो। वह काफी देर तक गोविन्द के चेहरे की ओर स्थिर निगाहों से देखता रहा और फिर बोला—"गोविन्द मेरे मित्र, इस बार तुमने स्वयं अपनी इच्छा से कदम उठाया है। अपने पथ का चुनाव तुमने कर लिया है। बहुधा मैं सोचा करता था कि, क्या कभी ऐसा भी मौका आयगा, जब तुम मुझसे एक कदम आगे रहोगे—अपने आप पर विश्वास कर, अपनी इच्छा शक्ति से कोई काम करोगे! आज तुमने इसे प्रत्यक्ष कर दिया। मुझे हार्दिक प्रसन्नता है। कामना है, तुम अंत तक इस पथ पर निर्विघ्न बढ़ते चले जाओ—तुम्हें मुक्ति प्राप्त हो.........!"

और, अब कहीं जाकर गोविन्द के समझ में आया कि, उसका मित्र उसे छोड़कर जा रहा है। भरीये कंठ से आँसुओं के बीच वह बोला— "सिद्धार्थ!"

सिद्धार्थ ने स्नेह-सिक्त स्वर में कहा—"गोविन्द यह मत भूलो कि, तुम अब बुद्ध के पवित्र

शिष्यों में से हो। तुमने घर-बार, माँ - बाप, सगे - सम्बन्धी, मित्र, सभी सांसारिक मोह माया का त्याग कर दिया है। बुद्ध के उपदेशों का सार यही है। ......कल सुबह ही मैं तुमसे विदा ले लूँगा, मेरे मित्र !"

दूसरे दिन सुबह, जब अभी सूर्य की किरणें भी नहीं फूटी थी, एक वयोवृद्ध संन्यासी गोविन्द और अन्य लोगों को ले जाने के लिए आया। दीक्षा की प्रारम्भिक रस्में अदा की जाने वाली थीं। गोविन्द ने अपने बचपन के मित्र से विदा ली और आँखों में आँसू भरे चला गया।

गूढ़ विचारों में खोया सिद्धार्थ घूमते-घूमते उस निकुंज तक जा पहुँचा, जहाँ बुद्ध स्थिर मुद्रा में बैठे थे। उनके मुख पर एक अलौकिक मुस्कान खेल रही थी। सिद्धार्थ ने उन्हें देखा और फिर उनके पास जा पहुँचा। अनुमति लेकर पास बैठता हुआ बोला-"महात्मन् ! कल मैंने आप के प्रवचन सुने। मेरे मित्र ने बौद्ध धर्म की दीक्षा ले ली है, पर मैं अभी अपनी राह पर आगे बढ़ना चाहता हूँ !"

"जैसी तुम्हारी इच्छा !" बुद्ध ने शांत भाव से कहा।

"मैं शायद बहुत ही स्पष्ट कहने का साहस कर रहा हूँ--" सिद्धार्थ ने कहा- "पर मैं आपको अपने विचार जताये बिना यहाँ से जाना नहीं चाहता ...... आप नाराज न हों ! मैंने कभी क्षणभर के लिए भी आपके उपदेशों में संदेह नहीं किया। पल भर के लिये भी मेरे दिल में ऐसी कोई धारणा नहीं आयी कि, आपने निर्वाण प्राप्त नहीं किया है ! जो-कुछ आपने कहा है, मुझे उसकी सत्यता से इनकार नहीं है, पर एक बात मैं अवश्य कहना चाहता हूँ। निश्चय ही, आप इससे असहमत नहीं हो सकते कि, आपने यह सब कुछ अपनी राह आप चलकर प्राप्त किया है- प्रत्यक्ष अनुभव करके ! उपदेशों के जरिये आपने कुछ भी नहीं पाया है, कुछ भी नहीं सीखा है। और, इसीसे मेरा यह विचार है कि, कोई भी व्यक्ति उपदेशों के सहारे मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकता। यह निश्चित है कि, ज्ञान-प्राप्ति के समय जो अनुभूति आपको हुई, आप उसे कभी भी शब्दों के माध्यम से नहीं बता सकते।

"बुद्ध के उपदेश"— थोड़ी देर रुक कर सिद्धार्थ ने फिर कहना आरम्भ किया-"बहुत-कुछ सिखलाते हैं- मनुष्य को किस प्रकार जीवन व्यतीत करना चाहिए, किस प्रकार बुराइयों से बचना चाहिए। लेकिन एक बात स्पष्ट है- इन उपदेशों में अनुभव की झलक तक नहीं मिलती, जो बुद्ध ने स्वयं प्राप्त किया है। आपके उपदेश सुनकर मेरे दिल में यही विचार उठे और मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचा। यही कारण है कि, मैं अपनी राह आप जाना चाहता हूँ- इसलिए कि, मैं अपने लक्ष्य तक आप पहुँच सकूँ। ......आज का यह दिन मुझे हमेशा याद रहेगा जब कि मेरी आंखों ने एक पूर्ण मानव के- एक पवित्र आत्मा के दर्शन किये हैं !"

बुद्ध की आंखें झुक गयीं। अपनी सदा की शांति स्वाभाविक मुद्रा से धीर-गम्भीर शब्दों में उन्होंने कहा-"मैं समझता हूँ, तुम अपने विचारों में भूल नहीं कर रहे हो। अपने लक्ष्य तक पहुँच सको, यही मेरी कामना है... !"

—४—

शहर से कुछ हटकर झुरमुटों के बीच स्थित एक भव्य भवन के मुख्य द्वार पर कुछ लोग एकत्रित थे और इन्हीं लोगों में एक ओर खड़ा था सिद्धार्थ भी! कई दिनों का मार्ग तय कर वह कल ही इस शहर में पहुँचा था। दाढ़ी कटा, योगियों का बाना उतार कर आज उसने अपने सिर के बालों में सुगंधित तेल लगा रखा था। अन्य लोगों के साथ ही उसकी आँखें भी रह-रहकर शहर की ओर से आनेवाली एक खूबसूरत पालकी की ओर उठ जाती थीं, जिसे राजसी अहलकारों-सी पोशाक पहने चार व्यक्ति उठाये हुए थे!

पालकी नजदीक आती गयी और सिद्धार्थ ने उस अनिंद्य सुन्दरी को देख लिया, जो कीमती वस्त्रालंकारों से सुसज्जित उसमें बैठी थी। थोड़ा झुककर उसने अभिवादन किया और प्रत्युत्तर में उस सौन्दर्य-प्रतिमा के होठों पर भी मुस्कान नाच उठीं। दूसरे ही क्षण पालकी भीतर प्रवेश कर झुरमुटों में गायब हो चुकी थी।

सिद्धार्थ आगे बढ़ा। पालकी के सबसे पीछे चलनेवाले अहलकार को रोककर बोला– "अपनी मालकिन से कहो कि, एक ब्राह्मण-कुमार मिलना चाहता है।"

थोड़ी देर के बाद सिद्धार्थ शहर की प्रसिद्ध वेश्या कमला के सम्मुख था। कोच पर अधलेटी कमला ने अपने सामने खड़े इस ब्राह्मण-कुमार को एक बार सिर से पैर तक देखा और फिर कोमल स्वर में बोली–"क्या तुमने कल भी मुख्य द्वार पर मेरा अभिवादन नहीं किया था?"

सिद्धार्थ ने स्वीकारात्मक मुद्रा में सिर हिलाया। कमला मुस्करायी–"लेकिन क्या कल तुम्हारे बाल काफी लम्बे नहीं थे? दाढ़ी भी तो बहुत बढ़ी थी? और, सिर में मनों धूल-है न?"

सिद्धार्थ भी मुस्कराया–"तुमने कल सब-कुछ देख लिया। तुमने इस ब्राह्मण-कुमार सिद्धार्थ को खूब अच्छी तरह परखा, जिसने योगी बनने के लिए अपने घर-बार का त्याग कर दिया था और तीन वर्षों तक योगी बनकर जंगलों में रहा। लेकिन अब मैंने अपना मार्ग बदल दिया है। कल इस शहर में आने पर सबसे पहले जिस व्यक्ति को मेरी आंखों ने देखा, वह तुम हो! मैं तुम्हें इस बात की बधाई देने आया हूँ कि, तुम इतनी सुन्दर हो! और, अगर तुम्हें बुरा नहीं लगे कमला, तो मैं तुमसे कहने आया हूँ कि, तुम मेरी मित्र और शिक्षिका बन जाओ– जिस कला में तुम पारङ्गत हो, मैं उसके आरम्भ से भी अनजान हूँ!"

कमला की मधुर हँसी से वह भवन गूँज उठा। बोली–"जंगलो का एक योगी मुझसे कुछ सीखने के लिए आये, यह मेरे लिए सर्वथा नवीन और पहला ही अनुभव है। मेरे पास आने वाले व्यक्ति तो सदा ही कीमती वस्त्रों में सजे रहते हैं। उनकी जेबों में सदा स्वर्ण-मुद्राएँ खनखनाती रहती हैं।......लेकिन मैं तुम्हारी शिक्षिका बनूँगी। मैं तुम्हें बताऊँगी कि, प्रेम क्या है और कैसे किया जाता है। इसलिए कि, तुम एक बहुत ही स्व-रुपवान् युवक हो। तुम्हारे सौंदर्य में नारी को अपनी ओर आकर्षित करने की बहुत बड़ी शक्ति है!'

●●●

कामास्वामी-शहर के प्रमुख व्यवसायी-के घर पर पहुँचकर सिद्धार्थ ने अपने आगमन की सूचना

अंदर भिजवायी। कमला के कहने पर ही वह यहाँ आया था। कमला ने उससे कहा था—"कमला को पाने के लिये तुम्हें भी अच्छे वस्त्रों में सज-धज कर आना होगा-तुम्हारी जेबों में भी कमला के लिये बहुमूल्य उपहार होने चाहिए!" और कमला ने ही उसे धन पैदा करने का मार्ग बतलाया था। कामास्वामी के कानों में सिद्धार्थ की प्रशंसा पहुचाने का कार्य भी कमला के निजी व्यक्तियों द्वारा ही सम्पन्न हुआ था। पर कमला की एक शर्त भी थी- "लेकिन एक बात याद रखना। कामास्वामी तुम्हें कभी नौकर नहीं समझे! उसे तुम हमेशा बराबरी का व्यवहार करने के लिए बाध्य करना और तभी तुम कमला को प्रसन्न कर सकोगे?"

……कामास्वामी ने सिद्धार्थ को अविलम्ब ही भीतर बुलवा लिया। मालिक और नौकरी के उम्मीदवार- दोनों ने मित्र की तरह एक-दूसरे का अभिवादन किया। अपनी तीक्ष्ण निगाहों से सिद्धार्थ को परखने की चेष्टा करते हुए कामास्वामी ने बात आरंभ की-"मुझे बताया गया है कि आप एक ब्राह्मण-कुमार हैं। काफी सुशिक्षित और सुसंस्कृत. लेकिन अपनी सेवाएँ किसी व्यवसायी को अर्पित करना चाहते हैं! तो क्या इससे यह निष्कर्ष निकाला जाय ब्राह्मण-कुमार कि, आप अभी आवश्यकता-बाध्य हैं?"

"नहीं!" सिद्धार्थ ने दृढ़ता से कहा—"मैं आवश्यकता-बाध्य नहीं हूँ; कभी रहा भी नहीं। मैं योगियों के साथ काफी समय तक रह चुका हूँ।"

"अगर आप योगियों के दल से आ रहे हैं, तो आप फिर आवश्यकता-बाध्य कैसे नहीं हैं? क्या सभी योगी ऐसे नहीं होते, जिनके पास उनकी अपनी कोई वस्तु नहीं होती?"

"मेरे पास भी कुछ नहीं है"—सिद्धार्थ ने जवाब दिया- "पर स्वयं मेरी इच्छा से ही और यही कारण है कि, मैं आवश्यकता-बाध्य नहीं हूँ।"

"लेकिन बिना अपनी किसी वस्तु के आप कब तक जीवन—यापन कर सकते हैं भला?"

"मैंने इस विषय में कभी नहीं सोचा, महाशय! तीन वर्षों तक मैंने बिना अपनी किसी वस्तु के जीवन व्यतीत किया है और मुझे कभी नहीं सोचना पड़ा कि, मैं किस प्रकार रहूँगा?'

"तो इसका अर्थ यह हुआ"- कामास्वामी मुस्कुराया—"कि, आप दूसरों की चीज पर जीवन बिताते आये हैं!"

"निश्चय ही!" सिद्धार्थ ने अविचलित भाव से कहा- "एक व्यवसायी भी दूसरों की चीजों पर ही अपना समस्त जीवन व्यतीत करता है!"

"बहुत सुन्दर!' कामास्वामी के स्वर में सच्ची प्रशंसा के भाव थे-"लेकिन व्यवसायी बिना किसी को कुछ दिये उसकी वस्तु नहीं लेता; वह उसके एवज में कुछ देता भी है!"

"यह तो इस सृष्टि का नियम ही है? प्रत्येक आदमी लेता है, तो बदले में कुछ देता भी है। इसी का नाम तो जीवन है!"

"लेकिन!" कामास्वामी ने आश्चर्य के स्वर में कहा- "आपके पास जब अपनी कोई वस्तु नहीं है, तो आप देंगे क्या?'

"प्रत्येक व्यक्ति वही वस्तु दे है, जो उसके पास होती है। सैनिक शक्ति देता है, व्यवसायी सामग्री, शिक्षक ज्ञान, किसान अनाज और एक मछुआ मछली!"

"ठीक!" कामास्वामी ने इसे स्वीकार करते हुए कहा-"लेकिन बताइये, आप क्या दे सकते हैं, आपने क्या-क्या सीखा है जिसे आप किसी को दे सकते हैं!"

"मैं विचार कर सकता हूँ, मैं प्रतीक्षा कर सकता हूँ, मैं उपवास कर सकता हूँ!"

"पर इनसे क्या लाभ हो सकते हैं? उदाहरण के तौर पर, बताइये, उपवास से किसी को क्या लाभ हो सकता है?"

सिद्धार्थ किंचित् मुस्कुराया- "आप इसके महत्व को समझने की चेष्टा करें, महाशय! यदि किसी व्यक्ति के पास खाने को कुछ भी नहीं है, तो उस वक्त सबसे अधिक बुद्धिमता का कार्य कोई है, तो उपवास करना। उदाहरण के लिये, यदि सिद्धार्थ ने उपवास करना नहीं सीखा होता, तो उसे बाध्य होकर आपके पास या किसी और के पास हाथ फैलाना पड़ता-नौकरी के लिए सही, क्योंकि भूख की उपेक्षा उसके लिए संभव नहीं होती। पर सिद्धार्थ ने चूँकि उपवास करना सीखा है, वह धैर्य के साथ प्रतीक्षा कर सकता है। वह अधीर नहीं है; वह आवश्यकता-बाध्य नहीं है और वह अपनी भूख को उपेक्षा भरी निगाहों से देखकर उसकी हँसी उड़ा सकता है! अब आप स्वयं कहें, क्या उपवास लाभ-प्रद नहीं है?"

"आप ठीक कहते हैं, ब्राह्मण-कुमार!" पूर्ण प्रभावित कामास्वामी ने परम संतोष के साथ कहा।......

और, उसी दिन से सलाहकार तथा व्यवसाय में भागीदार के रूप में सिद्धार्थ ने कामास्वामी के साथ कार्य आरम्भ कर दिया। अपनी प्रतिभा एवं तीक्ष्ण बुद्धि के बल पर शीघ्र ही उसने काफी सम्पत्ति इकट्ठी कर ली। शहर के इने-गिने सम्भ्रांत-सम्पन्न व्यक्तियों में उसकी गणना होने लगी। शहर के एक सुरुचि-पूर्ण हिस्से में वह एक छोटा, पर सुन्दर मकान किराये पर लेकर रहने लगा—नौकर-चाकर; सम्पन्नता के सभी साधन उसने उपलब्ध कर लिये। वह पूर्णतया सांसारिक बन गया!

कमला के यहाँ वह नियमित जाता रहा। सांसारिक बनकर धन उपार्जन करने के साथ साथ सिद्धार्थ ने कमला से भी बहुत-कुछ सीखा। प्रेम-कला में पारङ्गत कमला ने अपने इस 'शिष्य' को सब कुछ सिखा दिया। उसने अपने प्यार का समस्त सञ्चित कोष उस पर उड़ेल दिया।

ऐसी ही मुलाकातों में एक बार सिद्धार्थ ने कहा-"तुम बिलकुल मेरे ही समान हो, कमला-अन्य व्यक्तियों से भिन्न!"

कमला कुछ क्षणों तक अपलक देखती रही सिद्धार्थ की ओर और फिर प्रेम-विह्वल स्वर में बोली-"तुम मेरे सबसे अच्छे प्रेमी हो; दूसरों से अधिक शक्तिशाली, अधिक योग्य, अधिक आकर्षक! तुमने मेरी कला भी मुझसे सीख ली। कुछ अरसे के बाद, जब मेरी उम्र ढल जायगी, मैं तुम्हारे पुत्र की माता बनना पसंद करूंगी। लेकिन इतना सब-कुछ होने पर भी तुम योगी-के-योगी ही रहे! सिद्धार्थ! तुम वस्तुतः मुझे प्यार नहीं करते-तुम किसी को भी प्यार नहीं करते! क्या यह सत्य नहीं है?"

"हो सकता है!" सिद्धार्थ ने गम्भीरता

के साथ जवाब दिया—"ठीक तुम्हारी ही तरह मैं हूँ। तुम भी तो प्यार नहीं कर सकती, अन्यथा तुम प्यार को कला के व्यवसाय का बाना कैसे पहनाती? ... मेरे विचार से हमलोगों के समान व्यक्ति कभी किसी को प्यार कर ही नहीं सकते। सिर्फ साधारण व्यक्ति ही प्यार कर सकते हैं– यही उनका रहस्य है!"

दिन-पर-दिन और वर्ष-पर-वर्ष बीतते चले गये। सिद्धार्थ की सांसारिकता एवं सम्पन्नता भी इसके साथ–साथ ही बढ़ती गयी। माया–मोह के जिन बंधनों को छिन्न–भिन्न कर वह निकला था, उन्होंने उसे फिर चारों ओर से जकड़ लिया था और वह निरंतर गहराई में डूबता जा रहा था।

लेकिन तभी एक दिन—

सिद्धार्थ जब कमला के घर पहुँचा, तो वह बरामदे में खड़ी थी– बरामदे की धरन से लटकने वाले एक सुनहले पिंजरे के पास! सिद्धार्थ ने निकट पहुँचकर देखा– पिंजरे का छोटा व खूबसूरत पक्षी, जो प्रति सुबह सुरीले स्वर में गा-गा कर अपनी स्वामिनी को जगाया करता था, आज स्वयं सोया पड़ा था– मौत ने उसे अपनी शांतिदायिनी गोद में समेट लिया था।

सिद्धार्थ ने उसे अपनी ऊँगलियों में उठा लिया। कुछ क्षणों तक टकटकी लगाकर देखता रहा, फिर उसे बाहर सड़क की ओर फेंक दिया। और, उसी वक्त अनायास ही उसके दिल में भय की एक लहर व्याप गयी। अनजाने ही वह सिर से पैर तक काँप उठा। उसे ऐसा लगा, जैसे उस मरी हुई चिड़िया को फेंकने के साथ उसने अपना भी सब कुछ फेंक दिया हो– अपने-आपको खो बैठा हो!

काफी देर बाद जब उसकी तंद्रा टूटी, तो वह थकान अनुभव कर रहा था। एक अजीब प्रकार की उदासी नस-नस में व्याप्त थी। उसे ऐसा लग रहा था, मानो उसने अपने जीवन के दिन अब तक व्यर्थ गवाँ दिये हों– कुछ भी प्राप्त नहीं किया हो अब तक!

कमला से विदा लेकर सिद्धार्थ नदी किनारे बसे उद्यान में चला आया। स्वप्न में डूबे व्यक्ति की तरह चलकर वह आम के एक वृक्ष की साया में जा बैठा। उसके हृदय में मौत का भय समा गया था और वह एक प्रकार की बेचैनी अनुभव कर रहा था। एक-एक करके उसकी आंखों के सामने उसके अतीत के दिन आने लगे। शैशव से लेकर अब तक की घटनाएँ मानो एकबारगी साकार हो उठीं।

अब तक के जीवन में मुझे कब सही मानी में प्रसन्नता प्राप्त हुई है? .. एक नहीं, ऐसे कई मौके आये हैं– बचपन के दिनों में भी, जब मैं अपने चरित्र और ज्ञान के लिए गांव के समस्त व्यक्तियों की आंखों में प्रशंसा का पात्र था! अपने से अधिक शिक्षित, वयोवृद्ध और धर्मनिष्ठ ब्राह्मणों से धर्म-चर्चा करने और उनकी पूजा-अर्चना में सहायता पहुँचाने में भी मैंने आनन्द का अनुभव किया है। और, उन्हीं दिनों मुझे अपने भीतर एक आवाज सुनायी पड़ी थी– "तुम्हारे सामने साधारण व्यक्तियों से अलग एक मार्ग खुला पड़ा है। तुम्हें इसी मार्ग पर आगे बढ़ना है। बढ़ो– परमात्मा स्वयं तुम्हारी राह देख रहे हैं...... !"

अपनी युवावस्था में भी, जब मैं धार्मिक ग्रथों के द्वारा अपनी ज्ञान-पिपासा की तृप्ति करने का प्रयत्न कर रहा था, ज्ञान की तीव्र प्यास की बीच ही मुझे ऐसा लगा था, मानो कोई कह रहा हो- "आगे बढ़ो, आगे बढ़ो!" अंतरात्मा की इसी आवाज पर मैं घर छोड़कर योगियों के पास गया था, योगियों का साथ छोड़कर बुद्ध के पास गया और इसी आवाज ने मुझे वहाँ से भी आगे बढ़ने की प्रेरणा दी- अज्ञात व अज्ञान की ओर!

पर आज कितने वर्षों से मैं यह आवाज नहीं सुन रहा हूँ? कितने वर्ष आज व्यतीत हो गये जब से मैं अपने भीतर की अतृप्त प्यास का अनुभव नहीं कर रहा हूँ? मेरे जीवन में कोई आकांक्षा नहीं रही है, पर क्या मैं इन वर्षों में भी कभी जीवन से संतुष्ट रहा हूँ? नहीं, मुझे कभी सच्ची प्रसन्नता का अनुभव नहीं हुआ, कभी संतोष नहीं मिला?

"पर अब?" सिद्धार्थ ने अनुभव किया- "अब यह खेल समाप्त हो चुका है—मैं इसे और नहीं खेल सकता!" उसके भीतर एक सिहरन सी दौड़ गयी!

वह वहाँ सारा दिन बैठा रहा; अपने पिता के सम्बन्ध में, गोबिन्द के सम्बन्ध में, गौतम के सम्बन्ध में सोचता हुआ—"क्या मैंने इन सबका साथ कामास्वामी बनने के लिए ही छोड़ा था?"

और तब, ठीक अर्द्ध रात्रि में, जब सारा शहर निद्रा की गोद में निमग्न था, सिद्धार्थ अपने आसन से उठा। उद्यान से बाहर आकर उसने उसे एक बार देखा, शहर के मध्य में बने अपने बिशाल भवन की याद की और फिर मुस्कुराते हुए मन-ही-मन सबको हाथ जोड़ एक ओर चल दिया—शहर के और बाहर की ओर! उसे ऐसा लग रहा था, मानो वर्षों बाद उसकी अंतरात्मा फिर आवाज दे रही हो।

कामास्वामी ने बहुत दिनों तक सिद्धार्थ की प्रतिक्षा की, उसे ढूंढ़ा; पर कमला ने उसे कभी खोजने का प्रयास नहीं किया। सिद्धार्थ के गायब हो जाने का समाचार पाकर उसे तनिक भी आश्चर्य नहीं हुआ—वह उसे अच्छी तरह पहचान गयी थी और इसी से बहुत पहले से उसने इसकी आशंका कर रखी थी।

......यह समाचार सुनने के साथ ही वह अपने कमरे की उस खिड़की के पास गयी, जिसके पास ही लटकते हुए सोने के पिंजड़े में उसने एक खूबसूरत पक्षी को बंदी बना रखा था! पिंजरे का द्वार खोल उसने उस पक्षी को मुक्त कर दिया और तब तक उसकी ओर एकटक देखती रही, जब तक वह आँखों से ओझल न हो गया। उसी दिन से उसने अन्य लोगों से मिलना भी छोड़ दिया—सबके लिए खुला रहने वाला दरवाजा बंद कर दिया गया और कुछ समय बाद कमला ने अनुभव किया कि, वह शीघ्र ही सिद्धार्थ के पुत्र को माँ बनने वाली है!......

—५—

नदी-किनारे पहुँच कर सिद्धार्थ रुक गया। उसने सोचा—"मैं इस नदी के किनारे ही रहूँगा। यह वही नदी है, जिसे शहर आने के समय मैंने पार किया था। एक भले नाविक ने अपनी नाव में मुझे इस पार उतार दिया था। मैं

उसी सज्जन व्यक्ति के पास जाऊँगा। मेरा मार्ग एक बार उसकी झोपड़ी से आरम्भ हुआ था—उस नये जीवन का मार्ग, जिसे अब मैं त्याग चुका हूँ, जो अब मर चुका है। मेरा यह मार्ग, मेरी यह नयी जिंदगी भी, वहीं से शुरू हो, यही मैं चाहता हूँ!......"

अपनी अंतरात्मा की नव-जागरित आवाज भी सिद्धार्थ को स्पष्ट सुनायी पड़ रही थी—"इस नदी को प्यार करो, इसके साथ रहो और इससे कुछ सीखो!"

"हाँ! मैं इससे सीखना चाहता हूँ"–सिद्धार्थ बुदबुदाया—"मैं सुनना चाहता हूँ कि, यह क्या कहती रहती है! मैं जानता हूँ जो इस नदी और इसके रहस्यों को भलीभाँति समझ गया, वह बहुत-कुछ समझ जायगा—कोई भी वस्तु उसके लिए अगम-अगोचर नहीं रहेगी!"

और, आज सिद्धार्थ ने नदी का एक रहस्य जान लिया है—'नदी का यह पानी हमेशा बहता रहता है, आगे बढ़ता रहता है, फिर भी यह सदा उसी स्थान पर है और प्रतिक्षण नवीन-का-नवीन!' कौन इसे सच मान सकता है; कौन इसे जल्दी समझ सकता है! मैंने भी तो आज इसे देखा भर है—समझने की बात इतनी जल्दी कैसे कह दूँ!... "

सिद्धार्थ उठ खड़ा हुआ और नदी के किनारे किनारे उस घाट की ओर रवाना हुआ, जहाँ से इस राह से निकलने वाले यात्री नाव के द्वारा नदी पार किया करते थे।......दूर से ही उसने देख लिया—नाव इसी किनारे पर थी और उसका वह पूर्व-परिचित नाविक जो एक दिन उसे इस पार ले आया था, अपनी नाव में बैठा था।

"क्या तुम मुझे उस पार ले चलोगे?" सिद्धार्थ ने निकट आकर पूछा।

नाविक की आँखों में आश्चर्य झाँक उठा—इतना कीमती वस्त्र पहने एक सम्भ्रांत व्यक्ति इस तरह पांव पैदल और अकेले! फिर भी उसने कुछ कहा नहीं। सिद्धार्थ को बिठाकर नाव खेने लगा!

आखिर बातचीत का आरम्भ सिद्धार्थ को ही करना पड़ा—"तुमने अपने लिए बड़े ही श्रेयमय जीवन का चुनाव किया है, मित्र! नदी के किनारे रहने और प्रति दिन इसके वक्षःस्थल पर नाव खेने में कितना आनन्द आता होगा!"

नाविक मुस्कराया। नम्रता से बोला—"वस्तुतः यह श्रेयमय है, महोदय! जैसा कि, आप कहते हैं; लेकिन हर प्रकार की जिंदगी, हर प्रकार का काम श्रेयमय नहीं है?"

"हो सकता है! मगर मैं तुम्हारी इस जिंदगी से ईर्ष्या करता हूँ!"

"ओह!" नाविक फिर मुस्कराया; सहज स्वाभाविक मुस्कान—'पर बहुत शीघ्र ही इसका आकर्षण आपके दिल से जाता रहेगा। यह जिंदगी कीमती वस्त्रों में सुसज्जित व्यक्तियों के लिए नहीं है!"

सिद्धार्थ हँस पड़ा—"तुमने मुझे मेरे कपड़ों से आँका है, मेरे मित्र! लेकिन क्या तुम मेरे ये कपड़े, जो मेरे लिए बेकार के बोझ हैं, ले लोगे? यह भी स्पष्ट कह दूँ कि, मेरे पास तुम्हें पार उतारने का किराया देने के लिए कुछ नहीं है!"

"निश्चय ही, आप उपहास कर रहे हैं !" नाविक ने नम्रता से कहा।

"नहीं, मेरे मित्र! मैं उपहास नहीं कर रहा हूँ। एक बार और भी तुम मुझे बिना किसी किराये के नदी के एक किनारे से दूसरे किनारे तक ले गये थे। आज इतनी कृपा करो कि मेरे यह वस्त्र ले लो—किराये के रूप में ही सही !"

नाविक ने अपनी आँखें ऊपर की ओर देर तक टकटकी बांध कर देखता रहा।

"मैंने तुम्हें पहचान लिया है"—अन्त में वह बोला—'तुमने एक रात मेरी झोपड़ी में विश्राम किया था। एक लम्बा समय व्यतीत हो चुका है; सम्भवतः २० वर्षों से भी अधिक! मैं तुम्हें नदी के उस पार से इस ओर ले आया था और तब अच्छे मित्र की तरह हम दोनों ने एक-दूसरे से विदा ली थी। लेकिन क्या उस वक्त तुम एक योगी नहीं थे?......खेद है कि, मुझे तुम्हारा नाम स्मरण नहीं !"

"मेरा नाम सिद्धार्थ है और पिछली बार जब हम एक दूसरे से मिले थे, तो उस वक्त मैं वास्तव में, एक योगी था !"

"तुम्हारा स्वागत है सिद्धार्थ! मेरा नाम वासुदेव है। मुझे पूर्ण आशा है कि, आज रात्रि तुम मेरा आतिथ्य ग्रहण करोगे, मेरी ही झोपड़ी में विश्राम करोगे और मुझे बताओगे कि, तुम कहां से आ रहे हो तथा अपने इन कीमती वस्त्रों से इतना थक क्यों गये हो ?"

रात्रि की पूर्ण निस्तब्धता में, जब सिद्धार्थ ने अपनी अब तक की कहानी का आरम्भ किया, वासुदेव पूरी एकाग्रता के साथ उसे सुन रहा था। बचपन से लेकर कामास्वामी के यहां काम करने तथा कमला से प्रेम की बातें—सिद्धार्थ के संसार में पूर्णतया लिप्त हो जाने की बातें—सब वासुदेव सुनता रहा। न उसने कहीं कोई आलोचना की न बीच में बोला और न ही किसी प्रकार के ऊबने का भाव उसने दिखाया।

अपनी कहानी समाप्त करते हुए सिद्धार्थ ने कहा—रास्ते में मुझे एक बड़ा अद्भुत अनुभव हुआ। मैं उसे तुम्हें सुनाऊँगा, वासुदेव! नदी-किनारे थकावट से चूर होकर विश्राम करने के लिए मैं पल भर को लेटा ही था कि, झपकी आ गयी। उठने के बाद मैंने अपने भीतर एक प्रकार की नयी स्फूर्ति का अनुभव किया। ऐसा लगा मुझे, मानो किसी ने मेरे भीतर 'ओम्' का मन्त्र फूँक दिया हो। मुझे सृष्टि की हर वस्तु में एक नवीन आकर्षण का अनुभव होने लगा।"

वासुदेव थोड़ी देर तक चुप रहा और फिर गम्भीर शब्दों में बोला—"जहाँ तक मैं समझता हूँ, इसी नदी ने तुम्हारे भीतर 'ओम्' का मन्त्र प्रतिध्वनित किया था। इसने स्वयं तुम्हारी ओर मित्रता का हाथ बढ़ाया, यह एक अच्छी बात है। सिद्धार्थ, मेरे मित्र! तुम मेरे साथ ही रह जाओ! मेरे एकाकी जीवन को भी एक सङ्गी मिल जायगा। मेरे घर में तुम्हारे रहने के लिए स्थान और खाने के लिए भोज्य पदार्थ दोनों ही उपलब्ध हैं-वह हमारे लिए पर्याप्त होगा।"

सिद्धार्थ ने कृतज्ञता के स्वर में कहा—"मुझे तुम्हारा प्रस्ताव स्वीकार है। मैं तुम्हारा इसके लिए भी कृतज्ञ हूँ कि, तुमने मेरी सारी बातें बड़े अच्छे ढङ्ग से सुनीं। ऐसे व्यक्ति बहुत ही कम हैं,

जो यह जानते हों कि, किसी की बात कैसे सुनी जाती है! कम-से-कम मैं तो तुम्हारे समान और किसी व्यक्ति से अब तक नहीं मिला हूँ।'

"तुम भी इसे सीख लोगे" - वासुदेव ने जवाब दिया-"पर मुझसे नहीं। नदी ने मुझे सुनने की कला सिखायी है, तुम भी इसी से सीखोगे। नदी सब-कुछ जानती है। कोई भी व्यक्ति इससे बहुत कुछ सीख सकता है। ......तुम्हें याद होगा सिद्धार्थ! पहली बार जब हम मिले थे, तो मैंने कहा था --'हर वस्तु इस दुनिया में फिर लौट कर आती है, नदी हमें यही सिखलाती है!' मैंने तुम्हारे वापस आने की बात कही थी और तुम आ भी गये। फिर तुमने भी तो इस नदी से बहुत कुछ सीखा है। सम्पन्न और सभ्यसमाज का एक प्रतिष्ठित सदस्य सिद्धार्थ एक साधारण व्यक्ति की तरह जीवनयापन करेगा-उच्च शिक्षा प्राप्त एक कुलीन ब्राह्मण-कुमार एक नाविक बनेगा। इन सबकी प्रेरणा भी तो तुमने नदी से ही प्राप्त की है। सत्य की गहराई में जितना नीचे उतर सको, उतना ही अधिक तुम सीख सकोगे-कुछ पा सकोगे क्या तुमने यह भी नदी से नहीं सीखा? इसी तरह तुम और भी बहुत-सी बातें सीख जाओगे, मित्र!"

६

वर्ष बीतते चले गये, किसी ने उन्हें गिनने की चेष्टा नहीं की। और, तब एक दिन जब वासुदेव अपने घाट पर बैठा था, उसके कानों में किसी नारी-स्वर की चीख सुनायी पड़ी। तत्काल ही, दौड़ कर वह उस स्थान पर जा पहुँचा, जहाँ एक अधेड़ नारी बेहोश होकर पड़ी थी और उसका छोटा-सा बच्चा उससे लिपट कर चिल्ला रहा था। अविलम्ब उस नारी को गोद में उठा वह झोपड़े की ओर बढ़ा; बच्चे ने भी चिल्लाना बन्द कर दिया और उसके पीछे-पीछे चलने लगा।

सिद्धार्थ झोपड़े में ही था। दीपक के मध्यम प्रकाश में भी उसने उस बेहोश नारी को पहचान लिया और उसके साथ ही उसका हृदय जोरों से धड़कने लगा--वह कमला थी! उसे इस प्रकार एक साधारण नारी की वेष-भूषा में यहाँ देखकर सिद्धार्थ को कोई आश्चर्य नहीं हुआ---उसे यह बहुत पहले ही ज्ञात हो चुका था कि, कमला ने अपना सब-कुछ दान कर बौद्ध धर्म की दीक्षा ले ली है!

कमला का बेसुध शरीर अधिकाधिक नीला पड़ता जा रहा था। वासुदेव को समझने में देर न लगी कि, उसे किसी विषैले सर्प ने काट खाया है। विष को उतारने की पूरी चेष्टा की गयी, पर अब तक काफी विलम्ब हो चुका था। अन्ततः उसने निराश होकर उसे होश में लाने की दवा दी।

आँखें खोलते ही कमला ने सबसे पहले सिद्धार्थ को देखा जो उसके ऊपर झुककर उसके होश में आने की प्रतीक्षा कर रहा था। कमला को लगा, वह स्वप्न देख रही हो! मुस्करा कर उसने अपने प्रेमी की आँखों-में-आँखें डाल दीं और फिर धीरे-धीरे उसे सारी बातें याद आ गयीं - बुद्ध की अन्तिम अवस्था का समाचार जान उनके दर्शनार्थ शहर से उसका अपने बच्चे के साथ चलना दर्शनार्थियों की भीड़ में नदी के पार उतारना, थक कर एक वृक्ष की छाया में बैठना और वहीं एक काले सर्प का काट खाना—एक-एक कर उसे

सब-कुछ याद आ गया और इसके साथ ही व्याकुल स्वर में वह अपने बच्चे को पुकार बैठी !

"घबड़ाओ नहीं !" सिद्धार्थ ने सांत्वना दी–"वह यहीं है !"

विष के प्रभाव से कमला के लिए बोलना बड़ा कष्टकर हो रहा था। फिर भी मुस्कराने की चेष्टा करते हुए उसने रुक-रुक कर कहा–"सिद्धार्थ ! तुम अब वृद्ध हो चुके हो, पर मेरी आँखों में तुम बिलकुल वही हो, जिस रूप में पहले-पहल मैंने तुम्हें देखा था—गन्दे और बढ़े हुए बाल, उलझी दाढ़ी और नंगे पैरों का एक युवा योगी ! ......मैं भी तो वृद्ध हो चुकी हूँ......तुमने मुझे पहिचाना सिद्धार्थ ?"

सिद्धार्थ मुस्कराया—"मैंने तुम्हें तत्काल ही पहचान लिया, कमला !"

"और उसे ?" कमला ने अपने पुत्र की ओर संकेत किया—"वह तुम्हारा ही पुत्र है...... ।"

अधिक बोलने के कारण थक कर कमला ने आँखें बन्द कर लीं। सिद्धार्थ ने रोते हुए बच्चे को गोद में उठा लिया और उसे थपकियाँ दे देकर सुलाने लगा। थोड़ी देर बाद उसे वासुदेव के बिस्तरे पर लिटा कर वह वासुदेव के पास जा खड़ा हुआ। वासुदेव ने मुस्कराते हुए उसकी ओर देखा उन आँखों में करुणा की छाप स्पष्ट थी !

"वह मर रही है !" सिद्धार्थ ने कोमल स्वर में कहा और लौटकर कमला के पास खड़ा हो गया। कमला फिर होश में आ चुकी थी। सिद्धार्थ की ओर भर नजर देखते हुए बोली—"क्या तुमने उसे पा लिया ? .. ...तुम्हें शांति प्राप्त हो गयी सिद्धार्थ ?"

सिद्धार्थ मुस्कराया। उसने अपना हाथ कमला के कन्धों पर रख दिया !

कमला स्वयं बोली—"हाँ ! मैं देख रही हूँ, तुम्हें शांति प्राप्त हो गयी है ! मैं भी इसे प्राप्त करूँगी !"

"तुमने उसे पा लिया है, कमला !" सिद्धार्थ उसके कानों में फुसफुसाया !

कमला के चेहरे पर दिव्य सांत्वना का भाव चमक उठा। वह सिद्धार्थ की ओर देखती रही। वह सोच रही थी—"यह भी कैसा संयोग है ! मैंने गौतम को उनके अन्तिम क्षणों में देखने के लिए यह यात्रा की थी, लेकिन मैंने सिद्धार्थ को पा लिया और यह सिद्धार्थ भी उतना ही दिव्य तेजोमय प्रतीत हो रहा है, जितना मुझे विश्वास है, गौतम होंगे !......"

उसने सिद्धार्थ से यह कहना चाहा, पर उसकी जबान उसका साथ छोड़ चुकी थी। उसके अङ्ग-अङ्ग शिथिल पड़ते जा रहे थे। वह सिर्फ सिद्धार्थ की ओर देखती रह गयी—एकटक ! सिद्धार्थ कुछ क्षणों तक चुपचाप खड़ा रहा और फिर उसने अपने हाथों से कमला की खुली आँखें बन्द कर दीं—कमला के प्राणपखेरू पिंजरे का बन्धन तोड़ कर मुक्त हो चुके थे।

●●● ●●●

कमला का पुत्र अपने पिता की देख-रेख में बढ़ने लगा और साथ ही बढ़ने लगी उसकी उच्छृङ्खलता ! शहरी खाद से सींचा गया यह पौधा इस वन्य प्रदेश की भूमि पर पनपा तो अवश्य, पर इच्छा के विपरीत-विद्रोही बनकर। और, एक दिन यह शहरी वातावरण का अभ्यस्त पक्षी पिता

का स्नेह-बाँध तोड़ कर शहर भाग ही गया! सिद्धार्थ के हृदय को बड़ी चोट पहुँची। पुत्र-बिछोह में वह बिलकुल बावला हो उठा था--मोह माया में लिप्त एक साधारण सांसारिक व्यक्ति के समान।

और, एक दिन दुख का आवेग इतना प्रबल हो उठा कि, उसने अपने पुत्र को ढूँढ़ निकालने के लिए शहर जाने का निश्चय कर ही लिया। किन्तु नाव खेता हुआ जब वह जा रहा था, तो उसे ऐसा लगा, मानो नदी की लहरें उस पर हँस रही हों। उसने पानी में अपना प्रतिबिम्ब देखा और उसे अपने प्रतिबिम्ब में एक ऐसे व्यक्ति के चेहरे का सादृश्य प्रतीत हुआ, जिनको वह कभी जानता था, प्यार करता था और भय भी खाता था। यह उसके पिता की मुखाकृति से मिलता था!

सिद्धार्थ को स्मरण हो आया- एक दिन उसने भी अपने पिता को बाध्य कर दिया था कि, वे उसे योगी बनने की अनुमति दे दें। किस प्रकार उनकी इच्छा के विपरीत उसने स्वीकृति ली थी और दुबारा नहीं लौटा था! क्या उसके पिता ने उसके बिछोह की मर्मांतक पीड़ा इसी प्रकार नहीं अनुभव की होगी? ..

सिद्धार्थ ने नाव घुमा ली।

वासुदेव नदी के किनारे बैठा था। अपनी सदा की गम्भीर और शांत मुद्रा में वह सिद्धार्थ की बातें सुनता रहा। और, सिद्धार्थ के लिए यहाँ एक और नया अनुभव हुआ। ज्यों-ज्यों वह अपनी बातें कहता जा रहा था, उसे ऐसा लग रहा था, मानो वासुदेव वह व्यक्ति नहीं हो, जिससे वह अपनी कहानी कह रहा है। यह गतिहीन श्रोता उसकी सारी बातें अपने-आप में जैसे सोखता जा रहा था- मानो वह स्वयं नदी हो, स्वयं परमात्मा हो!

जब सिद्धार्थ की बातें समाप्त हो चुकीं, तो वासुदेव बोला-"तुमने नदी को सिर्फ हँसते ही सुना? तो फिर तुमने सारी बातें नहीं सुनीं। आओ, हम दोनों ही अभी बैठकर सुनें, यह क्या कहती है!"

सिद्धार्थ ने अपना सारा ध्यान नदी की ओर केंद्रित कर दिया। उसे नदी के चिरपरिचित 'कल-कल' में हजारों गले की सम्मिलित ध्वनि सुनायी पड़ी— समस्त विश्व के अन्तरतम से निकला एक दिव्य नाद 'ओम्'! ....

वासुदेव अपने स्थान से उठा। सिद्धार्थ के कंधे का स्पर्श कर बोला-"मैं इसी क्षण की प्रतिक्षा में रुका था, बंधु! अब मुझे विदा दो। मैंने बहुत दिनों तक इस संसार का उपभोग किया। पर अब मेरी अवधि समाप्त हो चुकी है। ... .. तुम्हारा मंगल हो, सिद्धार्थ!"

सिद्धार्थ का मस्तिष्क आप-से-आप इस महान् आत्मा के समक्ष झुक गया। वह विह्वल कंठ से बोला-"क्या तुम जंगलों में जा रहे हो?"

"हाँ!" वासुदेव ने जवाब दिया-"मैं अब उस परमात्मा में लीन होने जा रहा हूँ, जिसने इस सम्पूर्ण सृष्टि को एकता के धागे में बांध रखा है!... ..."

—७—

कमला के आलीशान भवन में, जो अब बौद्ध भिक्षुक का मठ बन चुका था, गोविन्द को अन्य भिक्षुओं के साथ रहते एक लम्बा समय बीत चुका

था। पर इधर कई दिनों से वह एक वृद्‌ध नाविक की चर्चा सुन रहा था। एक दिन की यात्रा की दूरी पर रहनेवाले इस नाविक के सम्बन्ध में लोगों का कहना था कि, वह एक महान् व्यक्ति है—सुख-दुख के बन्धनों से मुक्त !

गोविन्द के मन में अनायास ही इस तपस्वी नाविक से मिलने की इच्छा बलवती हो उठी और एक दिन वह नदी की ओर चल पड़ा। नाविक अपनी नाव किनारे लगाये बैठा था। जब नाव उन दोनों को लेकर दूसरे किनारे की ओर चल पड़ी, तो गोविन्द ने उस वृद्‌ध नाविक से कहा—"तुम साधु-संतों, बौद्‌ध भिक्षुओं और तीर्थ-यात्रियों के प्रति बहुत दयालुता बरतते हो। इनमें से कितने ही व्यक्तियों को कई बार तुम अपनी नौका में इस पार से उस पार से ले आये हो। क्या तुम भी शांति के सच्चे मार्ग- निर्वाण-पथ— की तलाश में नहीं हो ?"

नाविक की वृद्ध आंखों में मुस्कुराहट चमक उठी—"क्या तुम अभी तक शांति की खोज में भटक रहे हो, मेरे मित्र ? तुम्हारी आयु तो काफी अधिक मालूम पड़ रही है और तुमने बौद्‌ध भिक्षुओं का बाना पहन रखा है...... !"

"निश्चय ही मैं बहुत वृद्‌ध हो चुका हूँ- गोविन्द ने स्वीकार किया—"लेकिन मेरी खोज अभी समाप्त नहीं हो सकी है। कभी होगी भी नहीं- मेरे भाग्य में सम्भवतः ऐसा ही लिखा है। ...मालूम होता है, तुमने भी अपना जीवन इसी में व्यतीत किया है; क्या तुम इस सम्बन्ध में मुझे कुछ बताओगे, मित्र ?"

मुस्कुराहट नाविक के होठों पर उतर आयी—"अवश्य ही तुम बहुत अधिक खोजते होगे, मित्र ! परिणाम-स्वरूप तुम्हें सफलता नहीं प्राप्त होती !"

"यह कैसे ?" गोविन्द ने पूछा।

"जब कोई व्यक्ति किसी चीज की खोज करता है"-नाविक ने जबाब दिया-"तो उसकी आंखें सिर्फ उसी वस्तु को ढूंढ़ती रहती हैं, जिसकी उसे तलाश है और जिसे प्राप्त करने में वह असफल रहता है; क्योंकि वह सिर्फ उसी वस्तु के सम्बन्ध में सोचता है, जिसकी वह खोज करता है। खोज करने का अर्थ है एक लक्ष्य; पर प्राप्त करने का अर्थ है- स्वछन्द होना, बंधनहीन, लक्ष्यहीन ! तुम भी एक खोजी व्यक्ति हो मेरे मित्र, अतः तुम हमेशा अपने लक्ष्य की चिंता में लीन रहते हो और इसी धुन में तुम उन वस्तुओं की उपेक्षा कर जाते हो, जो ठीक तुम्हारी आंखों के सम्मुख ही हैं !......"

"मैं कुछ समझा नहीं, मित्र !"

नाविक इस बार फिर मुस्कुराया-"एक बार, आज से कई वर्ष पूर्व, तुम इस नदी के किनारे आये थे। एक मनुष्य यहाँ सो रहा था। उसकी बेखबरी में उसकी हिफाजत के लिये तुम यहाँ बहुत देर तक बैठे रहे, पर उस सोनेवाले मनुष्य को तुम पहचान नहीं सके, गोविन्द !"

आश्चर्य-विस्फारित नेत्रों से गोविन्द ने नाविक की ओर देखा और फिर हर्ष-विह्वल स्वर में वह बोला—"तुम सिद्‌धार्थ हो ? मैं तुम्हें इस बार भी तो नहीं पहचान सका, मित्र ! लेकिन तुमसे मिल कर बहुत खुशी हो रही है मुझे !"

सिद्‌धार्थ इस बार खुलकर हंस पड़ा—"मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ, गोविन्द और आज की रात मेरी ही झोपड़ी में बिताने का निमंत्रण भी देता हूँ !"

गोविन्द उस रात अपने बाल-सखा से उसके अब तक के जीवन की कहानी सुनता रहा। सवेरे

चलने के समय गोविन्द ने थोड़े असमंजस के बाद कहा–"यहाँ से जाने के पहले मैं तुमसे एक प्रश्न और पूछना चाहता हूँ। क्या तुम्हारे भी कुछ सिद्धांत हैं, नियम हैं या कोई ऐसा विश्वास, जो तुम्हें सही तरीके से जीवन व्यतीत करने में सहायता पहुँचाता हो? ...... क्या तुम्हारा भी कोई अलग मत है ?"

"तुम जानते हो, गोविन्द !" सिद्धार्थ ने जवाब दिया–"मैं आरम्भ से ही उपदेशों पर विश्वास नहीं करता हूँ और न ही कोई मेरा अलग मत है। हाँ, मैंने अपने जीवन में आनेवाले सभी व्यक्तियों से कुछ-न-कुछ सीखा अवश्य। लेकिन सबसे अधिक मैंने अपने मित्र वासुदेव और इस नदी से सीखा। यद्यपि वासुदेव एक साधारण मनुष्य था, फिर भी उसने सत्य को उतना ही समझा था, जितना गौतम ने! वह एक तपस्वी था–महान् पुरुष !"

"मैं जानता हूँ और विश्वास भी करता हूँ, मित्र !" गोविन्द ने कहा–"कि, तुमने कोई उपदेश नहीं ग्रहण किया, उपदेशों में तुम्हारी आस्था नहीं; पर तो भी तुम्हारे कुछ अपने विचार तो होंगे ही। अगर तुम मुझे उनके बारे में कुछ बताओ, तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी !"

"हाँ" सिद्धार्थ ने स्वीकार किया–"मेरे अपने विचार हैं, लेकिन उन सबके बारे में कुछ कहना एक कठिन काम होगा, मित्र! एक विचार ने मुझे अवश्य ही बहुत प्रभावित किया है और वह मैं तुम्हें बताऊँगा। गोविन्द! बुद्धि किसी को नहीं बांटी जा सकती। कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति अगर ऐसा प्रयास करता है, तो यह उसकी मूर्खता ही होगी !"

"तुम उपहास तो नहीं कर रहे ?" गोविन्द ने पूछा।

"नहीं, मैं तुम्हें वही बता रहा हूँ, जो मैंने सीखा है, जो प्राप्त किया है! ज्ञान किसी को दिया नहीं जा सकता! हाँ, तुम ज्ञान का मार्ग-भर बता सकते हो! कोई भी व्यक्ति इसे प्राप्त कर सकता है, इसके सहारे शांति से जीवन-यापन कर सकता है, पर उपदेशों के माध्यम से अपना यह ज्ञान वह किसी और को नहीं दे सकता। ज्ञान प्राप्ति के लिये व्यक्ति को स्वयं आगे बढ़ना पड़ता है–उपदेशों से यह सम्भव नहीं। ...एक बात और भी बताऊँ, तुम्हें !

"गोविन्द! प्रत्येक सत्य में उसका विपरीत भी उतना ही सत्य होता है। उदाहरण के लिये, कोई भी सत्य तभी शब्दों का बाना पहन सकता है, जब वह एकाङ्गी हो! कोई भी विचार, जो शब्दों में बताया जाता है, एकाङ्गी होता है– अर्द्ध सत्य; पूर्णता का इसमें आरम्भ से ही अभाव होता है।

"जब बुद्ध ने लोगों को उपदेश दिये, अपने धर्म के सिद्धांत बताये, उन्हें विश्व को दो भागों में बांट देना पड़ा– संसार और निर्माण; मिथ्या और सत्य; पीड़ा और मुक्ति! इसके सिवा लोगों को ज्ञान का उपदेश देनेवालों के लिये और कोई मार्ग नहीं है। लेकिन यह विश्व तो स्वयं एकाङ्गी नहीं है! सत्य व मिथ्या, पीड़ा व मुक्ति– इन सबके सम्मिश्रण का नाम ही तो विश्व है और जो पूर्ण सत्य है! कोई भी व्यक्ति न तो पूर्ण सांसारिक है, न निर्माण-प्राप्त; कोई भी व्यक्ति न तो पूर्ण धर्मात्मा है, न दुराचारी। यह भ्रम सिर्फ इसी से उत्पन्न होता है कि, हम सदा वर्तमान को सत्य मान बैठते हैं। पर गोविन्द! वर्तमान ही सत्य नहीं है— मैंने स्वयं कई बार अनुभव किया है !"

गोविन्द ने आंखें ऊपर उठायीं। सिद्धार्थ का चेहरा ज्ञान की परिपूर्णता से चमक रहा था और होठों पर शांति की एक अलौकिक मुस्कान थी—ठीक बुद्ध के समान !

गोविन्द का सिर आप-ही-आप श्रद्धा से झुक गया! उसकी आंखों से अविरल अश्रु धारा प्रवाहित हो रही थी और हृदय में प्रेम व आनन्द का स्रोत बांध तोड़कर बाहर आने को मचल उठा था! ●

—'नवनीत' से साभार ॥

आप को भी मानसिक स्फूर्ति मिल सकती है

● प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए० ●

स्फूर्ति! इस शब्द के साथ चुस्ती, सतर्कता आह्लाद, नया कार्य करने की क्षमता-वृद्धि, नया जोश और दिलचस्पी आदि आदि अनेक मानसिक भाव संयुक्त हैं।

आप कुछ उदासी, कुछ थकावट, निराशा आदि का अनुभव कर रहे हैं। मन जैसे गिरा गिरा सा हो रहा है। काम में तबियत नहीं लग रही है। आप कार्य से मुक्त होना चाहते हैं। किन्तु अनेक ऐसे कार्य हैं जो आप चाहें न चाहें करने आवश्यक हैं। आप को कुछ मानसिक स्फूर्ति चाहिए। उदासी और आलस्य से मुक्ति के लिए यह रामबाण दवा है।

ऐसे अवसरों पर जन साधारण सिग्रेट, फूँक कर उसके धुएँ से उत्तेजना प्राप्त करता है। आज अंधाधुन्द सिग्रेट बीड़ी के प्रयोग से अबोध जनता अपनी थकान मिटाती है। कुछ पान, चाय आदि को काम में लाते हैं। इनसे आगे चल कर कुछ विलासी शराब, चरस, भाँग, अफीम इत्यादि मादक और हानिकर पदार्थों से उत्तेजना प्राप्त करते हैं। मानसिक स्फूर्ति के ये सब उपाय निम्न कोटि के हैं। वस्तुतः सात्विक प्रवृति के व्यक्तियों के लिए ये सर्वदा त्याज्य हैं। इनकी स्फूर्ति से क्षणिक उत्तेजना के पश्चात् शरीर को भयंकर आघात पहुँचता है।

क्या मानसिक आलस्य से मुक्त होकर स्फूर्ति प्राप्त करने के कुछ सात्विक उपाय हो सकते हैं?

विलियम हैजलिट कैसे मानसिक स्फूर्ति प्राप्त करते थे, वे स्वयं लिखते हैं—"सिर के ऊपर स्वच्छ नीला आकाश हो, मैं हरी हरी मखमल जैसी घास पर एक टेढ़ी तिरछी सड़क पर ग्रामों के समीप तीन घंटे तक धीरे २ टहल कर सायंकाल घर आऊँ और फिर भोजन कर नए-नए विचारों में लिप्त हो जाऊँ! इन एकान्त के क्षणों में, हरे भरे खेतों में मैं हँसता हूँ; दौड़ता हूँ; कूदता हूँ और आनन्द विभोर होकर गा उठता हूँ।"

प्रकृति के सुखद, शान्त, मनोहारी वातावरण में जा कर हम जिस सात्विक स्फूर्ति का अनुभव करते हैं, वह शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं की जा सकती। ग्राम्य जीवन का वातावरण मानसिक तनाव दूर कर देता है और मनुष्य प्रकृति को संचालित करने वाली विश्वसत्ता के पवित्र दर्शन करता है।

१७वीं शताब्दी की एक अंग्रेज लेखिका श्रीमति Verney जो क्लेडन (इंगलैंड) में रहती थीं, एक स्थान पर अपनी मानसिक स्फूर्ति के सम्बन्ध में लिखती हैं—

"मेरा छोटा पुत्र बाहर से खेलता हुआ आ गया है और अपने वस्त्र उतार रहा है। मैं वात्सल्य में इतनी डूब गई हूँ कि उसे देख रही हूँ। मेरी लेखनी स्वतः रुक गई है। मन में

जो आ रहा था इस बालक के सहज सौंदर्य ने अपना विमुग्धकारी चितवन, सरलता और भोलेपन से भुला दिया है।"

श्रीमती पोर्टर को बच्चों की संगति में अपूर्व स्फूर्ति मिलती थी। वे लिखती हैं, "मैं भोजन करते समय मेज के इर्द गिर्द अपने दोनों बच्चों को बैठा कर बड़ा आनन्द लेती हूँ। सायंकाल उन्हें शान्तिपूर्वक शय्या पर सुला देना और प्रातःकाल उठा कर भोजन इत्यादि देने से बढ़ कर मुझे जीवन में अन्यत्र बड़ा आनन्द कहीं नहीं दीखता।

छोटे शिशुओं के सम्पर्क में मनुष्य क्षण भर के लिए अपनी मर्म व्यथाएँ भूल कर नव स्फूर्ति पाता है। बालकों में परमेश्वर का निवास माना गया है। उनके सम्पर्क में हम ऐसे जीवन में प्रविष्ट करते हैं; जो हमें उत्साह और उल्लास प्रदान करता है। यदि आप चाहें तो भोले बालकों की संगति में रह कर नव स्फूर्ति प्राप्त कर सकते हैं।

सुप्रसिद्ध पं० उदयशंकरभट्ट काव्य, नाटक तथा एकांकी के क्षेत्र में लोकप्रियता प्राप्त कर रहे हैं। अपने मूड के विषय में वे लिखते हैं—

"पहले तो मुझे घूमने की बहुत आदत थी··· अनेक बार दोस्तों के साथ चाँदनी रात में बाग में ही बैठा रह गया हूँ और रात बीत गई है। अब भी चांदनी रात में बाहर खाट पर १०-१२ बजे तक बैठ कर आनन्द लेता रहता हूँ। इससे मुझे बड़ी शान्ति मिलती है। इसके बिना मैं रह नहीं सकता। चाँदनी ही नहीं अंधेरी रात में भी मुझे बड़ा आनन्द आता है। अंधेरी रात में २-४ बार उठता हूँ और खड़ाऊँ पहिन कर खट खट करता हुआ घूमता हूँ। रेल की यात्रा में खिड़की खोल कर रात का आनन्द लेने में मुझे बड़ी शान्ति मिलती है··· थोड़ा बहुत संगीत का भी आनन्द लेता हूँ··· इत्र लगा कर सुनसान में घूमने में मुझे अवर्णनीय स्फूर्ति मिलती है। बहुत सी कविताएँ मैंने ऐसे ही लिखी हैं। यदि पसन्द की किताब मिल जाय तो रात भर पढ़ता रहता हूँ ··।"

क्या आप आलस्य में, सुस्ती और उदासी में पड़े हैं? मन में थकान का अनुभव कर रहे हैं? तो उठिये और कोई ऐसा उपाय ढूंढ़िये कि आप को स्फूर्ति मिले, आप की शक्ति बढ़े और काम में मन लगे।

पं० जवाहरलाल नेहरू जब देहरादून जेल में थे। तो प्रायः उदास रहा करते थे। उनका मन इधर उधर की कठोरता, बन्दिश, एकस्वरता, से इतना बेचैन हो उठता कि वे मानसिक समस्वरता के लिए फूलों का प्रयोग करते थे! वे लिखते हैं कि सफेद पुष्पों के सम्पर्क से मेरे मन में मृदु मरहम जैसी शीतलता छा जाती। कभी २ जब वे बाहर लाये जाते, तो दूर के पर्वत शिखर तथा नीले आकाश से ही उन्हें स्फूर्ति प्राप्त हो जाया करती थी।

इस वर्ष के नोबेल पुरस्कार विजेता श्री अर्नेस्ट हेमिंग्वे का मानसिक स्फूर्ति प्राप्त करने का ढंग बड़ा अनोखा है। उनके पास १६ कुत्ते, ५२ बिल्लियां, सैकड़ों कबूतर और तीन गाएँ हैं। उन की मित्रता सर्वत्र फैली हुई है। एक सफेद घंटा घर की चोटी पर बैठ कर वे लिखते हैं! वे स्वयं अपनी प्रेरणा के विषय में लिखते हैं—

"मैं सूर्योदय के साथ उठ बैठता हूँ और काम शुरु कर देता हूँ। बुलडाग नाम का एक स्पैनियल कुत्ता काम में मेरी सहायता करता है। तीन बिल्लियाँ अपना प्यार उड़ेल कर मुझे काम में सहायता देती हैं। काम समाप्त कर मैं खा पीकर तैरने जाता हूँ।"

आप स्वयं आत्मनिरीक्षण कर निश्चित कर सकते हैं कि किस सात्विक तत्व से आप को मानसिक स्फूर्ति प्राप्त होती है। ऐसी कौन सी वस्तु है, कौन सा सात्विक भोजन, पेय है, जो आप को तरंगित कर देता है? ऐसा कौन सा संगीत, भजन, अथवा ग्रन्थ है, जो आप के हृदय के तारों को मृदुलता से झंकृत कर देता है?

प्रकृति के नाना स्वरुप, लहलहाते खेत, मस्त पुष्प, हरित लतिकाएँ, मदमाती प्रवाहित सरिताएँ, अथवा भोले भाले जानवर, तोता, मैना कबूतर तीतर, बटेर, लवा, खरगोश, गाय, कुत्ता अथवा बिल्ली; अथवा बालकों का खेलता हुआ समूह संगीत, ईश भजन, पूजन भगवद्चिन्तन प्रेरणा दे सकता है। भक्तों का अनुभव है कि मनुष्य को भगवद्भजन से बढ़कर प्रेरणा देने वाला कोई दूसरा अधिक शान्तिदायक पदार्थ नहीं है। रिचर्ड ह्वाइटवेल नामक अंग्रेज लेखक अपने अनुभव के बल पर लिखते हैं कि प्रार्थना सर्वाधिक प्रेरक दिव्य उपाय हैं। ह्वाइटवेल के कुछ अनुभव सुनिये :—

"मानव जीवन में प्रार्थना वैसी ही है, जैसी मरुभूमि में निर्झर। सूखे से सूखे तपते-से, तड़पते-से हृदय पर प्रार्थना का दिव्य प्रसृत प्रवाह जब कल कल ध्वनि से फूट पड़ता है, तो युग युग की, जन्म जन्म की साधें लहलहा उठती हैं और यह प्रवाह है अनन्त एवं चिर जीवन, चिर सुन्दर। भगवान की प्रेरणा तुम्हें पुलकित करती रहेगी।"

सात्विक उपायों से अपने अन्दर स्फूर्ति की आदत डालना अपने शरीर मन तथा आत्मा को उच्च दैवी सत्ता से एकता उत्पन्न करना है।

शैक्सपीयर की सम्मति माननीय है, "जिस परिश्रम से हमें आनन्द और स्फूर्ति का अनुभव होता है, वह हमारी उदासी, सुस्ती और व्याधियों के लिए अमृत तुल्य हैं, हमारी वेदना की निवृति है।" ●

आत्मीयता का विस्तार करिये

● श्री अगरचन्द नाहटा ●

आत्मीयता अर्थात् अपनेपन की अनुभूति। विश्व के प्रायः समस्त प्राणियों में आत्मीयता सहज स्वभाव के रूप में पाई जाती है। पर उसकी परिभाषा में काफी अन्तर रहता है, किसी में वह बहुत सीमित दिखाई देती है तो किसी में वह असीम प्रतीत होती है। इसी प्रकार बुद्धी एवं घनीभूतता का भी अन्तर पाया जाता है। माता का पुत्र कैसा था, इसी प्रकार पारिवारिक-कोटम्बिक आत्मीयता होती हैं। उसमें मोह एवं स्वार्थ रहने से उतनी शुद्धि नहीं होती। जबकि सन्तों की आत्मीयता में यह दोष नहीं रहने से वह शुद्ध रहती है। किसी किसी में अपनेपन की अनुभूति बहुत घनीभूत पायी जाती है तो किसी में वह साधारण होती है।

प्राचीन काल में मनुष्यों में सरलता व स्नेह बहुत अधिक मात्रा में होता था। वर्तमान में सरलता की बहुत कमी हो गयी है। कपट एवं स्वार्थ की अधिकता हो जाने से आत्मीयता का बहुत ही ह्रास हो गया है। आज भी वृद्ध एवं भोले भाले ग्रामीण मनुष्यों का अन्तस्तल टटोलते हैं तो उनमें आत्मीयता का भाव गहरा प्रतीत होता है। मेरे अपने अनुभव की बात है। गौरीशङ्कर जी ओझा व पुरोहित हरिनारायण जी आदि की स्मृति होते ही उनकी आत्मीयता का दृश्य सन्मुख आ उपस्थित होता है। आदरणीय वयोवद्ध भैरवदत्त जी आसोपा वा रावतमल जी बोथरा आज भी जब कभी मिलते हैं हर्ष से गद्गद् हो जाते हैं। उनकी मुरझाई हृदय कली मानो खिल सी जाती है, जिसकी अनुभूति उनके चेहरे से व वाणी से भली भाँति हो जाती है। यद्यपि मेरा उनसे वैसा निकटवर्ती पारिवारिक सम्बन्ध नहीं है। अपने ४० वर्ष तक की आयु वाले निकट सम्बन्धियों में भी मुझे वैसी आत्मीयता के दर्शन नहीं होते। कई वृद्ध पुरुषों को मैंने देखा है उनमें आत्मीयता का भाव इतना गहरा होता है कि वे मिलते ही हर्षातिरेक से प्रफुल्लित हो जाते हैं।

प्राचीन काल में संयुक्त परिवार की समाज व्यवस्था इसीलिए अधिक सफल हो पाई। आज तो सगे भाई न्यारे २ हों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं पर पिता व माता से भी पुत्र अलग हो जाते हैं। जहाँ एक ही कुटुम्ब में पचास २ व्यक्तियों का निर्वाह एक साथ हो सकता था आज दो भी प्रेम के साथ नहीं रह सकते, इसका प्रधान कारण आत्मीयता का ह्रास ही है। साथ न रह सकें तो वे भले ही अलग-अलग रहें। पर एक दूसरे को न देखने से प्रेम के स्थान पर द्वेष भाव जाग्रत हो उठता है। गृहस्थ जीवन में अशांति का साम्राज्य छा जाता है।

ऐसी ही स्थिति में मानव मानव का शत्रु बनता है। गृह-कलह बढ़ता है, यावत् बड़े-बड़े महायुद्ध

उपस्थित होते हैं। विश्व की वर्तमान स्थिति पर दृष्टि डालने से यह बात दीपकवत् स्पष्ट प्रतिभाषित होती है। आये दिन महायुद्ध के बादल छाये हुए नजर आते हैं। आशंका तो प्रति समय बनी हुई है कि कब कौन किससे लड़ पड़े युद्ध छिड़ जाय। यदि आत्मीयता का भाव विस्तृत किया जाय तो यह नौबत कभी नहीं आने की। तब प्रति पक्षी या विरोधी कोई रहता ही नहीं है। सभी तो हमारे भाई हैं यावत् हमारे सदृश ही चैतन्य स्वरूप आत्मा होने से हमसे अभिन्न है। अतः किससे लड़ा जाय? उसका कष्ट अपना कष्ट है। उनकी बरबादी अपने ही अङ्ग का विच्छेद है। इसी भावना को अधिकाधिक प्रसारित करने से इन महायुद्धों का अन्त हो सकता है।

विश्व शांति की बात को एकबार अलग ही रखें पर भारत में ही अपने भाइयों के साथ कितने अन्याय व अत्याचार हो रहे हैं। हमारे अलगावरी भावना से ही पाकिस्तान का जन्म हुआ। और लाखों व्यक्तियों को अमानुषिक अत्याचारों का शिकार होना पड़ा। उसे भी अलग रख कर सोचते हैं तो प्रान्तीयता व गुट, पार्टी व दलबन्दी से हमारा कितना नुकसान हो रहा है। इसका एकमात्र कारण आत्मीयता की कमी है। आज काले बाजार, घूसखोरी आदि अवनति का बोल बाला है इसमें भी अलगाव की वृत्ति काम कर रही है।

यदि हम एक दूसरे से अभिन्नता का अनुभव करने लगें तो कोई किसी को मनसा, वाचा, कर्मना दुख दे ही नहीं सकता। क्योंकि हम से भिन्न तो कोई है ही नहीं। उनका दुख हमारा दुख है। हर एक व्यक्ति यदि ऐसी आत्मीयता का, अपनेपन का भाव रखे तो विश्व की समस्त अशांति विलुप्त हो जाय। सुख और शांति का सागर उमड़ पड़े। आखिर प्रत्येक मनुष्य जो जन्मा है वह मरता अवश्य है। तो थोड़े से क्षणिक जीवन के लिए अपने ही आत्म स्वरूप प्राणी मात्र को कष्ट क्यों पहुंचाया जाय? खुद शांति से जीओ और प्राणीमात्र को सुख पूर्वक जीने दो, यही हमारा सनातन धर्म है। भारत का तो यह आदर्श ही रहा है कि—

अयं मम परोवेत्ति गणना लघु चेतसां।
उदार चरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

अर्थात् ये मेरा, ये तेरा, यह भाव तो क्षुद्र वृत्ति के मनुष्यों का लक्षण है। उदार चरित्र व्यक्तियों के तो समस्त विश्व ही अपना कुटुम्ब है।

भारतीय दर्शनों में विशेषतः जैन दर्शन में तो आत्मीयता का विस्तार मानव तक ही सीमित न रख कर पशु पक्षी यावत् सूक्ष्मातिसूक्ष्म जन्तुओं के साथ भी स्थापित करते हुए उनकी हिंसा का निषेध किया है। अहिंसा की मूलभीत्ति इसी भावना पर खड़ी है कि जैसे दूसरे के बुरे व्यवहार से मुझे दुख होता है वैसा ही व्यवहार में दूसरों के साथ करता हूँ तो उसे भी कष्ट हुए बिना नहीं रहता। अतः उसे कष्ट देना अपने लिए कष्ट मोल लेना है। जो मुझे अप्रिय है वैसा व्यवहार दूसरों के साथ भी नहीं किया जाय। वास्तव में वह भी मेरा रूप है। अतः आत्मीय है।

भारतीय महर्षियों का यह आदर्श वाक्य हमारे हृदय में अंकित हो जाना चाहिए।

"आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।"

जीवन के प्रत्येक कार्य करते हुए इस महावाक्य की ओर हमारा ध्यान रहे। ईश्वर को सृष्टिकर्त्ता मानने वाले दर्शन जीव जगत को उस परमात्मा का अंश मानते हैं। सभी में प्राणियों में एक ही ज्योति प्रकाशित हो रही है। अतः उसमें किसी को कष्ट देना परमात्मा को कष्ट देना होगा।

भारतीय मनीषी सब जीवों को अपने समान मानकर ही नहीं रूके उनकी विचार धारा तो और भी आगे बढ़ी और सब जीवों में परमात्मा के दर्शन करने तक पहुँच गये। एक दूसरे से अलगाव का तो प्रश्न ही कैसे उठ सकता है। अपितु साथ मैत्री एक दूसरे के प्रति श्रद्धा एवं आदर से बुद्धि की स्थापना होती है।

वर्तमान में हमारी आत्मीयता इने-गिने व्यक्तियों तक सीमित होने से सङ्कुचित उसे उदार भाव द्वारा विस्तृत कर जाति, नगर, देश यावद्राष्ट्र व विश्व के प्रत्येक प्राणी के साथ (आत्मीयता-अपनेपन का) विस्तार करना है यही शांति का सच्चा अमोघ प्रशस्त मार्ग है।

हमारे तत्वज्ञों ने धर्म की व्याख्या करते हुए जिससे अभ्युत्थान व निश्रेयस प्राप्त हो वही धर्म है कहा है। अतः आत्मीयता का विस्तार वास्तव में हमारा आत्मस्वभाव या धर्म होना चाहिए। अलगाव भेद भाव को मिटाकर सबमें अपनेपन का अनुभव कर तदनुकूल व्यवहार करें तो सर्वत्र आनन्द ही आनन्द दृष्टिगोचर होगा। इसे आनंद के सामने स्वर्ग के माने जाने वाले सुख का कुछ भी महत्व नहीं रखते। एक दूसरे के कष्ट को अपना ही दुख समझ कर दूर करें व एक दूसरे के उत्थान को अपना उत्थान समझते हुए ईर्ष्या न होकर हमें हर्ष हो। एक दूसरे को ऊँचा उठाने में हम निरंतर प्रयत्न करते रहें इससे अधिक जीवन की सफलता और कुछ भी नहीं हो सकती।

आत्म ज्ञान

आत्मज्ञान का अर्थ है—अपने को पूर्ण रूप से पहचानना, अपने बलाबल को जानना, अपनी साधक और बाधक चित्त प्रवृत्तियों को समझना। अपनी इच्छाओं, कल्पनाओं और विचार धाराओं एवं शरीर सामर्थ्य को तोलना ही आत्म-ज्ञान है। इसके अतिरिक्त अपने अज्ञान को समझना सच्चा आत्म-ज्ञान है। प्राचीन नीतिकार अप्पय दीक्षित ने लिखा है कि नीतिशास्त्र के पंडित, ज्योतिषी, चतुर्वेदी शास्त्री और ब्रह्मज्ञानी बहुत मिलते हैं, परन्तु अपने अज्ञान को समझने वाले बिरले ही मिलते हैं।

नीतिज्ञा नियतिज्ञा वेदज्ञा अपि भवन्ति शास्त्रज्ञाः।
ब्रह्मज्ञा अपि लभ्या स्वाज्ञानज्ञानिनो विरला॥

अपने अज्ञान, अपनी अपूर्णता और असमर्थता को समझ कर ही अपने को संस्कारित, ज्ञान-गुण से समद्धित तथा आत्मशक्ति से समृद्ध बनाया जा सकता है।

ईश्वर का संसार दुःखी क्यों ?

● श्री विश्वामित्र वर्मा ●

यह जीवन सुख - दुःख का अजीब मिश्रण है, इसी में जीवन का आनन्द है। यदि केवल सुख हो या केवल दुःख हो, तो जीवन नीरस और भार स्वरुप हो जाय, असह्य हो जाय। दुःख अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि वह हमारी भूलों को प्रकाशित कर हमें पवित्र बनाता है। दुःख और मुसीबत सब पर अक्सर आते हैं और इनसे हम बहुत कुछ सीखते, और उन्नति करते हैं। दुःख अनेक प्रकार के होते हैं, शारीरिक पीड़ा या रोग, मानसिक क्लेश, चिंता, कलह अग्निकाण्ड, व्यापार में दिवाला, प्रियजन की मृत्यु अप्रिय और अनिष्ट का योग।

भक्त, अध्यात्मनिष्ठ और उच्च विचार वाले ऐसी दशाओं में यह भावना रखकर संतुष्ट और अटल रहने का अभ्यास करते हैं कि सब कुछ परमात्मा का है, वही निवटारा करेगा, वही हमारा रक्षक है। परंतु साधारण विचार के लोग कभी कभी समझ बैठते हैं और कहने लगते हैं; "ईश्वर ने हमें दुःख दिया है; वह हम पर दया नहीं करता, ईश्वर ने हमें भुला दिया, हमारी खबर नहीं लेता और कभी कभी कोई तो कह बैठते हैं, "परमात्मा अब नहीं रहा। यदि ईश्वर हमारी मुसीबतें दूर करने में समर्थ है तो क्यों नहीं करता? इतना अन्धेर, अन्याय, अत्याचार होते हुए ईश्वर क्यों कुछ नहीं करता? ऐसे ईश्वर के होने से तथा ईश्वर मानने से लाभ क्या? और ईश्वर के सर्व समर्थ होने का अर्थ ही क्या ?

क्या आपने कभी ऐसे संसार की कल्पना की है जहाँ दुःख, अन्धेर, अन्याय बिल्कुल न हो ? जैसे जंगलीपन की दशा से विकसित होकर हजारों वर्षों में हम आज सभ्य वैज्ञानिक मनुष्य बने हैं; कल्पना करते हैं कि कुछ हजार वर्षों आगे एक ऐसा युग आवेगा जब मानव इतना विकसित होगा कि आज की न्यूनताएँ, संकीर्णताएं, संघर्ष और विषमताएं कहानी मात्र के रुप में शेष रह जायगीं। तब आज के इतिहास का वर्णन कुछ ही पृष्ठों में होगा और लोग देवता स्वरुप, दिव्य विचार, व्यवहार और व्यवस्था वाले होंगे।

ऐसी ही कल्पना- योजना में आत्मविस्मृत हो एक दिन मैंने ईश्वर से कहा- मैं तो तुम्हारी इस अजीब, रोगी, दुःखी, संघर्षमय दुनियां से घबरा गया हूँ। मुझे यहाँ नहीं अच्छा लगता किसी दूसरे उज्वल लोक में मुझे ले चल। और यदि तेरे सभी लोकों में ऐसी ही विषमता और द्वैत हैं, तो मुझे सत्ता दे कि मैं एक पूर्ण संसार का निर्माण करुं, जहाँ केवल सुख आनन्द और प्रेम हो, आत्मीयता हो। ईश्वर ने कहा; खैर मैंने जो बनाया सो बनाया। अब तुम्हें वह शक्ति और कला सौंपता हूँ। हाँ, हाँ, तुम अपना कल्पित सुखी आनन्दमय प्रेमपूर्ण संसार बनाओ। मैं देखूंगा और तुमसे कुछ सीखूंगा।

ईश्वर की सत्ता पाकर, मैंने ऐसे लोक की रचना की जिसमें सब कुछ मेरी कल्पना के अनुसार पूर्ण और सुन्दर था। मेरे संसार में अभाव या गरीबी बिलकुल न थी। सबके पास सब कुछ था सबकी इच्छाएँ पूर्ण थीं। मैंने बड़े बड़े शहर बसाये और गांवों की फसलें भी सुरक्षित रहतीं क्योंकि खटमल पिस्सू, मच्छर, साँप बिच्छू पक्षी बनैले जन्तु आदि जिनसे मनुष्य को हानि होती थी, फसल को नुकसान होता था; मैंने नहीं बनाये थे। सबके दिल में प्रेम था, कोई किसी से किसी प्रकार का विरोध या झगड़ा न करता था। कोई व्यक्ति किसी की जायदाद पर लालच या ईर्षा न करता था। कोई किसी की बहिन बेटी या बहू पर नीयत न रखता था, न कोई स्त्री किसी पराये पुरुष को देखती थी। कोई किसी के सौंदर्य से न ईर्षा करता था, न कुरुपता से घृणा। कुरुपता थी ही नहीं।

घर में या शाला में, बालक कभी न लड़ते। मालिक मजदूर का सङ्घर्ष भी नहीं था। सब लोग एक एक दूसरे से निर्लेप थे दुख दर्द कहीं न था। हमारे बनाये संसार में आंधी तूफान, अकाल, बाढ़, आदि कुछ नहीं होते थे। कोई रोगी नहीं था, कोई डाक्टर, रसायनशाला, औषधालय न थे। न कोई वकील था, न न्यायाधीश, न कचहरी। सङ्घर्ष, विवाद या दुःख कहीं न था, इसलिए कोई अखबार या मासिक पत्र प्रकाशन भी न था, क्योंकि कभी कोई नयी घटना न होती थी। किसी को किसी वस्तु की आवश्यकता न होती इसलिये विज्ञापन की भी आवश्यकता न थी। किसी को मनबहलाव की जरुरत, या ज्ञान पिपासा भी न थी; क्योंकि सबलोग ज्ञानी सर्वथा पूर्ण और आनन्दमय थे। सभी इन्द्रियातीत थे। मुक्त थे।

एक दिन मैं अपने इस नये बनाये हुए संसार की सुन्दरता और पूर्णता को देखते हुए आत्म संतुष्ट सा खड़ा था, इतने में ईश्वर भी साक्षात् प्रगट हो गया!

"तो तुमने पूर्ण, सुखी आनन्दमय, सुन्दर संसार बना लिया न!

मैंने कहा—हां, देखो न! कैसा सुन्दर, पूर्ण संसार है! ईश्वर मेरा संसार देखने के लिए घूमने लगा और मैं भी उसके साथ साथ।

ईश्वरः ये ऊंचे सुन्दर शहर, सुन्दर गाँव, खेत, बगीचे तुमने बनाये हैं।

मैंने कहा—हां, देखो, कितने सुन्दर!

ईश्वरः परन्तु यहाँ के रहने वाले कहाँ हैं, क्या कर रहे हैं? कोई दिखाई नहीं देता। किसी का हल्ला गुल्ला सुनाई नहीं देता। किसी को गाली बकते, या ईश्वर-भक्ति, आराधना-कीर्तन आदि करते नहीं सुनता हूँ! किसी की हँसी नहीं सुनाई देती, कोई मुस्कुराता नहीं दिखाई देता।

मैंने कहा-आईये देखिये। हमारे इस नये संसार में कोई विवाद या विरोध नहीं करता, फिर गाली गलौज या हल्ला गुल्ला क्यों सुनाई दे? यहाँ कोई मरता नहीं फिर उसके वियोग में कोई रोवे क्यों? किसी को रोग या पीड़ा नहीं है, फिर कराहना चिल्लाना क्यों सुनाई दे? कभी आंधी तूफान, बाढ़ या अकाल नहीं होता फिर लोग किससे भय खाएं, क्यों प्रार्थना करें?

शेष पृष्ठ ३७ पर

कबीर के राम

● प्रो० रत्नचन्द्र शर्मा ●

चाहे रामानन्द जी का शिष्य होने के कारण कहिये और चाहे तत्कालीन सन्त-सम्प्रदाय की प्रवृत्ति के कारण कहिये कबीर दास जी राम के भक्त थे और थे राम नाम के अनन्य उपासक। वे राम को ही सर्वस्व समझते थे। राम उन का पति था, पिता था और थी माता। उन्हों ने स्वयं "मैं राम की बहुरिया", "सखो सुहाग राम मोहि दीन्हा", "बाप राम राया अब हूँ सरन तिहारी", "हरि जननी मैं बालक तोरा" आदि कह कर राम को पति, पिता और माता आदि रूप में स्वीकार किया है।

कबीर न केवल स्वयं ही राम के उपासक थे, वरन् अन्य सब को भी राम की उपासना का सदुपदेश देते थे। उनका कहना है—"कहे कबीर एक राम जपुहु रे, हिन्दू तुरक न कोई।"

यही नहीं, बल्कि उनके विचार में शिक्षा का चरम उद्देश्य केवल राम की प्राप्ति ही है। वे ऐसी शिक्षा को नहीं चाहते जो राम नाम का उपदेश नहीं देती। वे कहते हैं—

"नहीं छाड़ौं बाबा राम राम।
मोहि और पढ़न सूँ कौन काम ॥"

और यदि कोई शिक्षा राम नाम के विरुद्ध कोई अन्य उपदेश देती है तो कबीर के मतानुसार ऐसी शिक्षा देने वाली पुस्तकों को न पढ़ना ही अच्छा है। उल्टे ऐसी पुस्तकों को तो नदी में बहा देना चाहिए। जैसे-

"कबिरा पढ़ना छांड़ि दे पुस्तक देय बहाय।
बावन आखर सोधि के करे ममे चित्त लाय ॥"

गोस्वामी तुलसी दास भी राम के अनन्य भक्त हैं, परन्तु तुलसी और कबीर के राम में अन्तर है। वे सगुणवादियों द्वारा स्वीकृत राम के उपासक नहीं हैं और न ही अवतार वादी हैं। सगुण-वादी दशरथ-सुत राम को पूजते हैं, परन्तु कबीर के राम दशरथ-सुत राम न होकर घट-घट-वासी राम हैं। कबीर स्वयं कहते हैं—

"दशरथ सुत तिहूँ लोक बखाना।
राम नाम का मरम है आना ॥"

और

"ता साहिब के लागौं साथा।
दुख-सुख मेटि जो रह्यो अनाथा।
नां दशरथ घरि औतरि आवा।
नां लंका का रांव सतावा ॥"

राम से कबीर का अभिप्राय निर्गुण ब्रह्म से है जिसे उपनिषदें सर्व व्यापक अक्षर ब्रह्म कह कर पुकारती हैं। और "निरगुण राम निर्गुण राम जपहु रे भाई" कहते हुए उन्होंने स्वयं इस बात का निर्देश किया है।

कबीर का राम सर्वव्यापक है और सर्वान्त-र्यामी है। वह अवाङ्-मानस-गोचर है। उस के नाम अनन्त है, उसका स्वरुप अपरम्पार है।

वह निरञ्जन है, उसका रूप नहीं, रेखा नहीं। वह सागर भी नहीं, पर्वत भी नहीं, धरती भी नहीं, आकाश भी नहीं, सूर्य भी नहीं, चन्द्र भी नहीं, जल भी नहीं और पवन भी नहीं है। वह समस्त दृश्यमान पदार्थों से विलक्षण है और सब से न्यारा है। वह समस्त वेदों से अतीत पाप और पुण्य से परे, ज्ञान और ध्यान का अविषय, स्थूल और सूक्ष्म से विरहित, भेख और भीख के अगम्य, डिम्भ और रूप से परे तथा अनुपम त्रैलोक्य विलक्षण परम तत्त्व है। अधिक क्या वह सगुण और निर्गुण के भी परे है। और सब कुछ होने पर भी सब कुछ नहीं है। वह व्यापक ब्रह्म है जो सर्वत्र एक भाव से व्याप्त रहा है। पंडित हो या योगी, राजा हो या प्रजा, वैद्य हो या रोगी, वह सब में आप रम रहा है और सब उस में रम रहे हैं। यह नाना प्रकार का जड़-चेतनात्मक जो प्रपंच दिखाई दे रहा है, सब उसीका रूप है। सारा खलक ही खालिक है और खालिक ही खलक है। कबीर कहते हैं—

"लोधा जांनि न भूलो भाई।
खालिक खलक खलक में खालिक, सब घट रहियौ समाई।।"

संसार के समस्त साधक, सिद्ध, पीर, पैगम्बर ऋषि, मुनि, योगी, यति, उस एक ही राम को उपासना करते हैं। विष्णु उसी की पूजा करते हैं, शिव उसीका ध्यान लगाते हैं, परन्तु फिर भी उसका पार नहीं पा सकते।

"विष्णु पूजा करै ध्यान शंकर धरै,
मनहि सुबिरंचि बहु बिबिध बानी।
कहै कबीर कोउ पार पावै नहीं,
राम को नाम है अकह कहानी।।"

और

"ब्रह्म सनकादि कोइ पार पावै नहीं
तासु का नाम कह राम राया।।"

कबीर ने इस भावाभावमय राम के लिए हरि, गोविन्द, केशव, माधव, महादेव आदि अवतारवाद के नामों को और अल्लाह, खुदा, करीम आदि इस्लाम धर्म में प्रचलित ईश्वर के नामों का भी स्थान-स्थान पर प्रयोग किया है। परन्तु इन नामों से पुकारते समय भी उनका प्रयोजन सगुण अवतार अथवा सातवें आकाश पर स्थित अल्लाह से कभी नहीं होता। उनका विष्णु वह है जो संसार रूप में विस्तृत है, उनका 'कृष्ण' वह है जो संसार का निर्माण करता है; उनका 'गोविन्द' वह है जो संसार को धारण करता है; उनका 'महादेव' वह है जो घट घट को जानता है; उनका 'गोरख' वह है जो केवल ज्ञान से गम्य है; उनका 'सिंह' वह है जो चराचर जगत् का साधक है; उनका 'खुदा' वह है जो दस द्वारों को खोल देता है; उनका 'अल्लाह, वह है जो सेवा से परे अलख निरंजन है; उनका 'रब' वह है जो चौरासी लाख योनियों का परवरदिगार है; उनका 'करीम' वह है जो सब पर कृपा कर रहा है।

राम को खोजने के लिए किसी मन्दिर में, मसजिद में अथवा किसी बन में जाने की आवश्यकता नहीं है। वह प्रत्येक हृदय में मौजूद है। हृदय में ही क्यों, प्रत्येक शरीर में मौजूद है। शरीर में संचार करने वाला रक्त मूठ है, चाम मूठ है शरीर के अन्य अङ्ग भी मूठ हैं, परन्तु

सत्य है वह राम जो इस सारे शरीर में रम रहा है, सारे शरीर में व्याप्त है। शरीर ही क्यों, चराचर जगत् में व्याप्त है। कबीर कहते हैं–

"कहै कबीर विचारि करि, जिनि कोई खोजै दूरि।
ध्यान धरौ मन सुद्ध करि, राम रह्या भरपूरि॥
कहै कबीर विचारि करि, झूठा लोहू चाम।
जो या देही रहित है, सो है रमिता राम॥"

उसे मन में ही खोजना चाहिए, शरीर में ही ढूंढना चाहिये। वही अन्दर है, वही बाहर है। यदि उसे अपने अन्दर नहीं पा सके, तो बाहर पाना असम्भव है। मूल को जल देना चाहिये पत्तों को देने से क्या लाभ? कबीर कहते हैं—

"कहहि कबीर बनखंड-में क्या मिले,
दिलहि को खोज दीदार पावै॥" ●

पृष्ट ३४ का शेशांष

ईश्वर के साथ घूमता हुआ मैं उसे अपने संसार की विशेषता दिखला रहा था।

ईश्वर: तो तुम्हारे यहाँ कोई मुस्कुराता, कराहता, या रोता हंसता नहीं है! तुम्हारे यहाँ के बच्चे भी नहीं शोर गुल करते! मैंने कहा—जब कोई आपस में किसी को चोट नहीं पहुँचाता तो किसी को रोने की, चिल्लाने की आवश्यकता ही क्या पड़े?

ईश्वर: और वे मुस्कराते भी नहीं?

मैं: वे मुस्कुरायें भी क्यों? उन्हें सुख दुःख का कोई भाव नहीं हैं, वे निर्विकार हैं।

ईश्वर: तो तुम्हारा यह संसार आत्महीन है, मुर्दा है, यहाँ के सब निवासी मृतवत् हैं। तुम्हारा यह आदर्श, पूर्ण, सतचित् आनन्द स्वरुप एक रस संसार तो मेरे दुःख और संङ्घर्षमय संसार से भी गया बीता है, जहाँ कोई गति नहीं, हलचल नहीं, जीवन नहीं। रसैकता में गति या जीवन नहीं है। तुम्हारा यह संसार किस अर्थ का? जिसका कोई विकास नहीं।

परम पिता का यह सिद्धान्त सुनकर मैंने अपना बनाया हुआ आदर्श संसार समेट लिया। ●

पृष्ठ ८ का शेषांश

सकते हैं? उस अन्तर-नाद को सुनिये। इसी को तुलसी साहब ने कहा है–

"सुति ठहरानी रहै अकासा।
तिल खिड़की में निस दिन बासा॥
गगन द्वार दीसै एक तारा।
अनहद नाद सुनै झनकारा॥
"तिल परमाने लगे कपाटा।
मकर तार जहँ जीव का बाटा॥"

शब्द की धार सबके अन्दर है। मकरा तार पर नीचे से ऊपर आता जाता है, उसी तरह शब्द के द्वारा भी नीचे से ऊपर उठ सकते हैं। अपने अन्दर में यात्रा करने के लिए बिन्दुनाद ही सहारा है। इसी का अवलम्ब लेकर हम वहाँ पहुँच सकते हैं, जहाँ परमेश्वर परमात्मा का साक्षात्कार होगा। यही बिन्दुनाद ध्यान की महिमा है। यही मुनियों का नादानुसन्धान है।

"नास्ति नादात्परो मंत्रो नदेवः स्वात्मनः परः।
नानुसन्धेः परा पूजा नहि तृप्तेः परम सुखम्॥"

नादानुसन्धान के समान कोई पूजा नहीं है। सबको चाहिये कि नाद और बिन्दु का ध्यान करे। गुरु महाराज हमलोगों को कृपा करके इसकी शिक्षा और युक्ति दे गये हैं, उनका अभ्यास हमलोगों को करना चाहिये। भोजन कम कीजिये। विशेष भोजन से निद्रा आयेगी, भजन नहीं होगा। इसलिये कम खाइये और भजन कीजिये। ●

नाम जप या कीर्तन की विधि

● श्री रामलाल पहाड़ा ●

निमाड़ जिले में सींगाजी नामक एक सन्त हो गये हैं। इनके कुटुम्ब में भैंस चराने का काम होता था। इनके नाम पर एक खेड़ा बस गया है जहां इनकी और परम्परागत पुरूषों की समाधियां बनी हुई हैं। इनको हुए लगभग ३०० वर्ष हो गये हैं। इनके नाम पर प्रत्येक वर्ष शरद पूर्णिमा को मेला लगता है जिसमें बैल और भैंसों की अधिक बिक्री होती है। किसी कारण से सींगाजी कुछ समय के लिये भामगढ़ के जागीरदार के यहां चाकर हो गये थे। एक दिन कार्यवश हरसूद से भामगढ आ रहे थे। आने में विलम्ब हो गया था, मध्यरात्रि का समय हो रहा था। मार्ग में ब्रह्मगिर स्वामी का स्थान था। स्वामी जी के शिष्य मंजुल राग में गा रहे थे

"समझिल्यो रे मना भाइ अन्त न होय कोय अपाना। माया का फंद मुनी भुलाना ठगि जासे हो निदाना।"

इस को सुनकर सींगाजी के मन में वैराग्य हो गया। उसने चाकरी छोड़ दी और स्वामी की सेवा करना आरम्भ कर दी। कुछ समय में स्वामी जी ने इन पर अनुग्रह किया। सन्त का जीवन अङ्गीकार कर ये रहने लगे। अनुग्रह के उपरान्त शरीर प्रारब्ध भोगार्थ गृहस्थी के कार्य करते रहे। इनकी वाणी का एक पद यहां दिया जाता है। इससे इनके सन्त जीवन का कुछ आभास मिल जायगा।

खेती खेड़ोरे हरिनाम की जामु मुक्तोलाभ।
पाप का पालवा कटाव जो काटी बाहर बाल।
(नाख) कर्म की कासीएचाव जो खेती चोखी थाप।
श्वास प्रश्वास दोउ बैल है सुरति रास लगाव।
प्रेम पिराणो कर धरो, ज्ञान आर लगाव।
वोहं बक्खर मूपजो सोहं सरतो लगाव।
मूल मन्त्र बीज बोव जो खेती लूमझूम थाप।
सत को माडवो (माल्यो) रोपजो धर्म पैड़ी लगाव।
ज्ञान का गोला चलाव जो सुआ उड़ी उड़ी जाय।
दया की दावन राल जो बहुरी फेरा नहीं होव।
कहे सींगा सुनो भाइ साधो आवागमन नहीं होय।
खेती खेड़ोरे हरिनाम की।

शब्दार्थ—जामु = जिसमें। मुक्तो = बहुत। पालवा = व्यर्थ के पौधे जो खेतों में उगते हैं। बाल = जल दो। नाख = डाल दो। कासी = डँठल आदि का कूड़ा कचड़ा। एचाव = बीनचुन कर अलग करो। चोखी थाप = अच्छी होगी। रास = बैलों को बांधकर वश में रखने की रस्सी। पिराणो = हाँकने की लकड़ी। आर = लकड़ी के छोर में लगी हुई नुकीली कील। बक्खर = हल के समान एक हथियार जिससे खेत की मिट्टी समथर की जाती है। यह काम हल से जोतने के उपरान्त होता है। सरतो = एक हथियार जिससे बीज बोया जाता है। यह एक लकड़ी के लट्टे का बनाया जाता है। लट्ठे में छेद करके तीन बांस की पोंगरियां लगायी जाती हैं, इनमें दाना डाला जाता है और

बोया जाता है। सरता को तिफ्फन भी कहते हैं। लूमझूम = बहुत। रालजो = फैलाओ।

भावार्थ—इस पद में रूपक बांध कर नाम जप की विधि बताई है। नाम जप को सफल बनाने केलिए किन बातों को सम्भालना आवश्यक है और किनको दूर करना। सामान्य (भौतिक) खेती करने के लिए व्यर्थ के पौधों को काट कर जला देते हैं। पड़े हुए डण्ठल कूड़ा कर्कट को बिन चुन कर अलग करते हैं तब खेती अच्छी होती है। खेती के काम में दो बैल रहते हैं। उनको रास से बांधते हैं और हांकने के लिए हाथ में लकड़ी रखते हैं जिसमें नुकीली कील रहती है। बखर चलाकर मिट्टी बराबर कर लेते हैं और तिफ्फन से बीज बोते हैं। इतने परिश्रम से खेती में फसल अच्छी होती है। रक्षा करने के लिए मचान बांध कर पक्षियों को उड़ाने के लिए गोफन चलाते हैं। फसल कट जाने पर दावन चला कर दाना निकाल लेते हैं और घर लाकर निश्चिन्त हो जाते हैं। वैसे ही शरीर को क्षेत्र माना है, इसमें नाम जप ही फसल बोना है इसलिए इस अध्यात्मिक सूक्ष्म खेती को अध्यात्मिक सूक्ष्म रीति से करने में सफलता होगी अन्यथा परिश्रम व्यर्थ होता रहेगा। इस आध्यात्मिक नाम जप की खेती में बहुत लाभ होगा सो हे मनुष्यो नाम जप करने के पहले या करते हुए अपने अशुभ विचारों को, पापों को ज्ञानाग्नि से जला दो, फिर कर्म के आडम्बरों को हटा दो और शुद्ध चित्त से निष्काम कर्म करना आरम्भ करो। इतना साधन करने के लिए श्वास का ध्यान रखो। पूरक, रेचक करते हुए कुम्भक को सम्भालो। अपने इष्ट देव का ध्यान करते रहो, अपनी सुरति अपने इष्ट पर रखो। प्रेम से व्यवहार करो और अपने तीव्र ज्ञान का सदुपयोग करते रहो। मन विषयों की ओर जावे तब उसे ज्ञान द्वारा पुनः अपने लक्ष्य पर ले जाओ। इसके लिए नियमित रीति से "ओमहं सोहं" का जप करो। 'सोहं' का जप इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना में विधि पूर्वक करो, तब नाम जप हृदय में स्थिर होगा और अच्छा लाभ होगा। इस स्थिति को पाने के लिये धर्म के आधार पर सत्य का पालन करो, सत्य व्यवहार करते रहो और प्राप्त ज्ञान का स्मरण किया करो, तो विषय वासनाएँ दूर होती जायगी। अन्तिम ध्यान देने की बात यह है कि सब के साथ दया का वर्ताव करते रहो। इस तरह साधन करते हुए नाम जप करने से जन्म मरण का चक्र छूट जायगा और परम गति प्राप्त होगी, भगवान ने गीता में कहा है, जो मनुष्य शास्त्र विधि को छोड़कर मनमाना करते हैं वे सुख, शांति, सफलता एवं परम गति नहीं पाते। इस-लिए नाम जप या अन्य कार्य भी यथा विधि करना चाहिए। ●

सच्चे योगियों की पहिचान

● श्री रामवरण सिंह 'सारथी' ●

कुछ लोगों का कथन है कि अपने परिवार, माता, पिता, स्त्री, पुरुष और घर-द्वार से सम्बन्ध तोड़े बिना कोई सच्चा योगी हो नहीं सकता? योग, तपस्या, साधन, ध्यान और पूजा में ये सबके सब बाधक हैं। जब तक इन बाधाओं के बन्धन से मुक्त नहीं होगा, तब तक भला कोई किस तरह योगी बनने का साहस कर सकेगा, यह एक अजीब बात है। विचित्र पहेली है। यह ठीक है कि मन की एकाग्रता और तन्मयता के बिना कोई योग की साधना भी नहीं कर सकता? तो, क्या परिवार, मां, बाप, स्त्री और पुत्र मन की एकाग्रता और तन्मयता में अवरोधक है और इनसे दूर रहने से मन एकाग्र हो जायगा? यदि ऐसी बात है तो राजा जनक तो अपने परिवार के बीच रहते हुए भी योगी थे। यहाँ तक ऋषी गौतम अपनी पत्नी अहिल्या के साथ ही रहते थे फिर भी वे योगी ऋषी और मुनि थे। इन घटनाओं की ओर दृष्टि दौड़ाने से स्पष्टत ऐसा भासित होता है कि हमारा परिवार और हमारा समाज योग के मार्ग में बाधक नहीं है। हम परिवार और समाज के साथ ही रहकर सच्चे योगी बन सकते हैं। श्रीकृष्ण अपने परिवार और समाज के साथ रहकर ही योगीराज कहे जाते थे। यह तो हमारे बुद्धि की बलिहारी है कि हम श्रीकृष्ण, गौतम और राजा जनक जैसे सच्चे योगियों की बातों पर गौर नहीं करके गेरूआ वस्त्र धारी ढोंगी और झूठे योगियों की बातों पर विश्वास जमा लेते हैं। इस संसार में ऐसा स्थान है कहाँ— जहाँ हमारा अपना कोई परिवार और समाज न हो, भाई और बन्धु न हो, पहाड़ों की चोटियों से लेकर जंगल के घनी झाड़ियों में रहने वाले प्राणी हमारे परिवार के हैं। पेड़ पौधे से लेकर जंगली शेर, भालू तथा सिंह ये सब हमारे परिवार के हैं। जिस प्रकार घरेलू परिवारों में भी बैर विरोध चलता है उस प्रकार वे हमारे परिबार के रहते हुए भी उनसे बैर विरोध है। वे हमारे प्राणों के दुश्मन हैं और हम उनके प्राणों के शत्रु हैं। इस बैर-विरोध और शत्रुता का अन्त किया जा सकता है। जिस तरह कभी कभी मन के ऊपर विकार छा जाने से हम अपनी मां, बहन, स्त्री और पुत्रियों से वैर विरोध करते हैं, फिर कुछ दिनों, महीनों अथवा वर्षों के बाद वैर-विरोध का अपने आप अंत हो जाता है। ये तो अपनी इच्छा, प्रकृति प्रवृत्ति और भावना के ऊपर निर्भर है। यहाँ तो कुछ लोग ऐसे थे जिन्हें राम और कृष्ण से वैर-विरोध था, शत्रुता थी; तो, क्या वे शेर भालू, सिंह, सांप और बिच्छु की नाई क्रूर थे, हिंसक थे अथवा समाज और परिवार के

लिए खतारनाक थे ? लेकिन, यह ठीक है कि कुछ लोग इनसे चिढ़े रहते थे और उन से वैर-विरोध रखते थे। इस कारण हमारे विरोधी और शत्रु तो हर जगह मिलेगें। तो क्या हम अपने विरोधियों और शत्रुओं के आतंक से डर कर इधर-उधर भागते चलेंगे, छिपते रहेंगे।

कुछ लोग योगी बनने के लिए घर को छोड़ते हैं और जंगलों में जाकर बसते हैं। माता के स्नेह को भूलते हैं और भालुओं एवं जंगली जीवों से प्रेम बढ़ाते हैं। वे अनुभव करते हैं कि भालू और जंगली जीव ही सिर्फ हमारे अपने हैं और मां शत्रु है। जंगली हाथियों का चिघाड़, शेरों और सिंहों को गर्जना, जंगल के अनेकानेक जीवों की अटपटी वाणियाँ उन्हें भली प्रतीत होती हैं लेकिन अपनी जीवन संगिनी की मीठी-मीठी वाणियाँ उन्हें कड़वी मालूम होती हैं। ऐसे लोगों को आप किसी भी अवस्था में योगी नहीं कह सकते। ये तो बाघ, भालू, सांप-बिच्छू और सिंह से भी अधिक भयंकर हैं। एक बाघ, भालू, अजगर, सिंह और बिच्छू योगी, साधु, ऋषि, सन्त और महात्मा के दर्जे को प्राप्त कर सकता है, लेकिन, सिर्फ योगी कहलाने के लिए अपने-अपने घरों से निकल कर मठों, मन्दिरों, आश्रमों, कुटियों, तीर्थों, जंगलों और पहाड़ों के बीच दौड़ लगाने वाला व्यक्ति योगी नहीं कहला सकता ! यदि कोई जंगल आदि स्थानों को निर्जन स्थान मानकर वहाँ साधना करने के लिए जाता है, तपस्या के वास्ते दौड़ लगाता है, तो निश्चय जानिये कि वह सरासर पागल है। एकदम मूर्ख और बेवकूफ है, उसकी खोपड़ी औंधी है। जंगल तो किसी भी अवस्था में निर्जन कहलाने का अधिकारी है नहीं। जंगली-जीव-जन्तु कहाँ रहते हैं ? फिर जहाँ जंगली प्राणियों की भरमार हो, अधिकता हो उसे कोई निर्जन किस तरह कहने का साहस करेगा ? जहाँ प्रकृति है, वन है, गर्मी है, वर्षा है, आकाश है और है पानी— वहाँ निर्जनता नहीं रह सकती है। पवन, गर्मी, आकाश, पानी और मिट्टी ये ऐसे तत्व हैं, जिन तत्वों के समिश्रण से नित्य लाखों प्रकार के जीव बनते और मिटते हैं। इस कारण जिन स्थानों में नित्य लाखों प्रकार के जीव बनते और मिटते हैं, उन स्थानों को कोई निर्जन कहने की ढिठाई कैसे करेगा ? अतः जंगल, पहाड़, गुफा, झाड़ी आदि स्थान किसी तरह निर्जन नहीं है, इस कारण वहाँ सच्चे योगी रहते ही नहीं हैं।

दर असल में हम अपनी प्रकृति, प्रवृत्ति, इच्छा और भावनाओं को समेटने का प्रयत्न नहीं करते। सिर्फ आँख, कान बन्दकर योगी बनना चाहते हैं। यदि पालथी लगाकर केवल आँख कान, बन्द कर देने मात्र से ही योगी हो जाता है तब तो सब अंधा और बहरा योगी बन गया है। रंगीन कपड़ों में योग नहीं है। मैंने, शांति सन्देश, के किसी अंक में लिखा है कि मन अन्धा है, बड़ा चंचल है और समग्र शरीर का राजा है। इस अंधे और चंचल राजा का हमारी दसों इन्द्रियां सेवक हैं। जब तक मन रूपी अन्धे और चंचल राजा को शान्त नहीं किया जायगा, तब तक योग के मार्ग में किसी को सफलता भी नहीं मिल सकती।

आप अपने मन को अपनी चित्तवृत्तियों के निसेध द्वारा इस लायक बना दीजिये कि जिससे उसकी सारी चंचलता नष्ट हो जाय और उसमें स्थिरता आये। आप सदैव इस तथ्य पर गौर करते रहिये कि मेरा जीवन अपने लिए नहीं बल्कि संसार के प्राणी मात्र के लिए है, उनके दुखों को दूर करने के लिए है। आप अपने पास किसी भी चीज को उसी मात्रा में संग्रह कर रखिये, जितनी से आवश्यकता की पूर्त्ति हो। अपनी आवश्यकता से अधिक चीजों को संग्रह करना पाप है, अपराध है और है मानवता के प्रति भयंकर जुर्म। आप इस जुर्म से अपने आपको सब समय दूर रखिये।

यदि आप इन क्रियाओं को अपने जीवन में स्थान देंगे तो बात की बात में गाँधी और विनोबा की भाँति महान योगी कहला सकते हैं। असल में लोग किन्हीं कारणों से सत्य और प्रेम से दूर भाग उठे हैं। योग में प्रेम के माध्यम से सत्यता का साक्षात्कार किया जाता है। जब मन आत्मा और चित्तवृत्तियाँ सत्य में पूर्ण रूपसे एकाग्र हो कर तन्मय हो जाती है तभी सच्चा योगी कहलाने का अधिकारी बन सकता है। सत्य बड़ा गहन है। इस कारण सत्य की परख करने की शक्ति होनी चाहिये। योग में सत्य की परख और तृष्णाओं का अंत है। तृष्णा बड़ी भयावनी वस्तु है, वह प्राणी मात्र को अपनी गुलामी की जंजीर में बाँध लेती है। प्राणी-मात्र तृष्णा और वासना की गुलामी की जंजीरों में बँधे हुए हैं। सत्य के दर्शन से वासनाओं की गुलामी से मुक्ति मिलती है। सत्य का दर्शन ही आत्मा और परमात्मा का दर्शन है, षष्ट दर्शन है। यह षष्ट-दर्शन कोई दार्शनिक ग्रंथ नहीं, बल्कि अपने शरीर के भीतर स्थित षष्ट दर्शन से है। हमारे शरीर के भीतर छः प्रकार के चक्र हैं। उन छः प्रकार के चक्रों का दर्शन ही षष्ट दर्शन कहलाता है। योगी लोग जब षष्ट दर्शन पढ़ते हैं, तब हमें विश्वास करना चाहिये कि वे छः प्रकार के चक्रों का दर्शन करते हैं। ऐसी अवस्था में योगी बनने के लिए छः प्रकार के चक्रों से अवगत होना चाहिये, इन्हें जाने बिना योग की साधना करना अपने आप को धोखा देना है। योग के द्वारा चितवृत्तियाँ निर्मल बनती हैं। योगी लोग योग से चित्तवृत्तियों की सफाई करते हैं। प्रश्न है—चित्त की वृत्तियाँ है क्या ? कोई माने अथवा न माने, लेकिन हमारा चित्त आकाश की तरह शून्य है। आकाश का अपना कोई विशेष रंग भी नहीं है। जिस तरह आकाश देखने में शून्य नहीं दिखलाई पड़ता है और उसमें करोड़ों तारे चमकते हैं, सूर्य और चाँद नील सरोवर जानकर उसमें तैरते हैं, उसी तरह हमारे चित्त रूपी आकाश में तारे की तरह विविध प्रकार के विचारों की तरंगे उठती हैं, और पुनः उसीमें विलीन हो जाती हैं, अतः योगियों के विचार रूपी तरँगें सूर्य की तरह होती हैं, जिसमें ज्ञान के प्रकाश, सद्व्यहार और सद्दृष्टि की आभा होती है। योगियों के चित्त में ज्ञान का प्रकाश सूर्य बन कर स्थित रहता है। अतः हमारी चित्त वृत्तियाँ जब तक निर्मल नहीं होती, तब तक योग की साधना भी नहीं की जा सकती। चित्त की निर्भीकता ही सच्चे योगी की कसौटी है ! जब हमारा चित्त स्वच्छ है तब हम अनायास घर-परिवार के साथ रहते ही सच्चे योगी हैं।

शाँति के साधन

● साधुवेष में एक पथिक ●

सत्यान्वेषण करते हुए ज्ञानी महापुरुषों द्वारा हमें शान्ति प्राप्ति के साधनों का ज्ञान हुआ। यह भी समझ में आ गया कि प्रत्येक मानव सुख-प्राप्ति के लिये, जो कि भोगों से मिलते हैं, परतंत्र है; किन्तु शान्ति प्राप्ति के लिए सदा स्वतंत्र है। सुख सांसारिक वस्तुओं तथा व्यक्तियों के संयोग से मिलता है, शांति संयोग के त्याग द्वारा सत्य के योग से प्राप्त होती है। संयोग के लिये परतन्त्रता है, त्याग तथा योगानुभव के लिये मानव स्वतंत्र है।

मनुष्य जब तक पूर्ण परात्पर परमात्मा में ही बुद्धि स्थिर कर उन्हीं में निवास नहीं करता; तब तक पूर्ण शान्ति अथवा परमानन्द का अनुभव कहीं नहीं कर सकता। उसे नित्य किसी न किसी अभाव से दुःखी रहना पड़ता है। सभी प्रकार के अभाव दुख की निवृति और परमानन्द की प्राप्ति का साधन सत्याधार परमात्मा का पूर्ण योगानुभव है।

परमानन्द स्वरुप परमात्मा के योगानुभव से सांसारिक पदार्थों के संयोग-वियोग जनित सुख-दुःख मिट जाते हैं। संसार के सुख तथा दुःख ही तो प्राणी के बन्धन का कारण हैं। अब प्रश्न उठता है कि परमात्मा का योगानुभव किस तरह हो, तो इसका साधन परमात्मा के प्रति प्रगाढ़ भक्ति है। इस प्रकार की भक्ति का साधन प्रगाढ़ ध्यान है। ध्यान करना नहीं पड़ता है, स्वतः ही यह होता रहता है और यही सच्चा ध्यान है। इस तरह के साधन का साधन प्रगाढ़ प्रेम है। प्रेम होने पर स्वतः ध्यान रहता है, और प्रेम वह है जिसमें प्रेम-पात्र के अतिरिक्त और किसी के लिये हृदय में स्थान न रहे; अपने तन-मन के सुख-दुःख का भी ध्यान न रहे। इस प्रकार के प्रेम का साधन परम प्रभु परमात्मा की नित्य कृपा का अनुभव है। सांसारिक सम्बन्धियों में जिसकी जितनी अधिक सुखमय कृपा का अनुभव होता है, उतना ही उससे प्रगाढ़ स्नेह होता है। विचार दृष्टि से देखने पर पता चलता है कि परमात्मा की हम पर अनन्त कृपा है। वे तो हमारा कभी त्याग या तिरस्कार करते ही नहीं हैं, उन्हीं में रह कर उन्हीं की सत्ता से हम अपनी सभी प्रकार की वासनाओं, कामनाओं की पूर्ति करते हैं, नाना प्रकार के सुख-दुःख भोगते हैं। अज्ञान वश अपने सुख की प्राप्ति के लिये हम चाहे जितने पाप-अपराध करे, फिर भी उन्हीं से नित्य जीवन की शक्ति पाते हैं। इस तरह की कृपा का जितना ही अधिक अनुभव होता है, उतना ही परम प्रभु के प्रति प्रेम बढ़ता जाता है। इस प्रकार कृपानुभव का साधन परमाधार प्रभु का ज्ञान है। परमाधार परमात्मा को जानने का साधन है, सूक्ष्म बुद्धि और सद्गुरुदेव के प्रति सात्विक श्रद्धा। कदाचित् किसी की बुद्धि मन्द है, तो ज्ञानी सद्पु-

(शेष पृष्ठ ४८ में)

ग्राहकों से

हम नीचे उन ग्राहकों की नामावली प्रकाशित कर रहें हैं जिन्होंने चतुर्थ वर्ष का वार्षिक मूल्य अभी तक नहीं भेजा है। उन्होंने ग्राहक सूची से नाम हटाने की भी सूचना नहीं दी। उन्हें यह अंक भी भेजा जा रहा है और उनसे यह आशा की जाती है कि वे दो साल का चन्दा एक साथ भेज देंगे या एक वर्ष का पुराना चन्दा भेज कर ग्राहक सूची से अपना नाम कटवा लेगें। ऐसे भी बहुत से ग्राहक हैं जिन्होंने ६ अंक प्राप्त कर लेने पर अपना नाम कटवा लिया है और ६ अंकों का दाम नहीं भेजा है! उनसे अनुरोध है कि कम से कम ६ अंकों का दाम भेज दें।

सम्पादक

तृतीय वर्ष के ग्राहकों की सूची जिनका चन्दा चतुर्थ वर्ष का नहीं आया।

ग्रा० सं०	नाम	पत्रालय	ग्रा०सं०	नाम	पत्रालय
१८	फूलचन्द अग्रवाल	मनिहारी	२३०	अकलू भगत	चोपड़ा रामनगर
३४	डा० धन्ना लाल मुंजे	किशनगंज	३२९	मास्टर शुकदेव शर्मा	अरजपुर
७६	जगदीश मंडल हेड पंडित	तरसुआबड़गाँव	३३०	गणेश प्रसाद राय	रूपौली थाना
८०	भुवनेश्वर दास	,, विहपुर	३३५	श्यामलाल साह कल्लर साह	चम्पा नगर
८१	झुमक दास, शाहपुर टोला	,, ,,	३५७	रतेन्दू दास वकील	सासाराम
८२	चमरू दास, ,,	,, ,,	३६८	ज्वाला प्रसाद	सासाराम
१०७	पूरन दास शम्भू दास अग्रवाल	जलालगढ़	३७६	फुलेश्वर साह	पलासी
१२१	भीखन शर्मा	पूर्णिया	३८६	श्री नारायण शर्मा	चौसा
१२४	शत्रुघन प्रसाद मंडल	सोनवरसा दियारा	३८८	चतुरी भगत लक्ष्मी नरायण	लौआलगाम
१२७	अयोध्या प्रसाद भगत	बोलपुर	३९२	शांति दास	सोनाली
१३४	वैद्यराज स्वामी ब्रह्मकाश,ब्रह्म प्र०जी	रामनगर	३९४	हरि दास	कहलगाँव
१४१	परशुराम मिश्र	जमालपुर	३९९	शुकदेव साहु	हथिऔना
१५२	श्री लाल शर्मा	खरीक बजार	४०१	बकमलाल विश्वास	पटेङ्गना
१५६	बालगोविन्द सिंह	मेरी गंज	४११	अशर्फी प्रसाद यादव	चोपड़ा राम नगर
१८३	विश्वनाथ दास	तरसुआ बड़गांव	४२४	जयनारायण मंडल	बनैली
२१५	बाबू लाल साह	वेलदौर बाजार	४२५	जालिम दास	पलासी

४२८	गणेश प्रसाद मुन्नी	भंगहा	६१७	नकछेदी प्रसाद मंडल	सिमरबन्नी
४३२	हरिवंश नारायण सिंह	मनिहारी नवाबगंज	६१८	भूवनेश्वर मंडल	नौवाड्योढ़ी
४३६	शिव प्रसाद चौधरी	नवाबगंज मनिहारी	६२५	नन्दकिशोर पुस्तकालय	सिमरबन्नी
४४६	मुन्नी लाल साह शम्भू दयाल	जलालगढ़	६३१	भगवान भगत	ढोलबज्जा बाजार
४४६	रघुनन्दन प्रसाद साह	सुकढ़िया	६४०	नरसिंह भगत	सोन्डीहा बाराहाट
४५०	रामेश्वर सेकसनल औफिसर	झारसुगज	६३४	जीतेन्द्र नाथ बर्मा	मनिहारी नवाबगंज
४५४	उचित लाल यादव	सिमरबन्नी	६४०	दारोगा साह ठाकुर साह	सत्तारपुर
४६२	हेड मास्टर, ट्रेनिंग एकेडेमी	मुंगेर	६४७	बौनाय शर्मा	मेरी गंज
४६६	संतलाल सिंह	बनमनखी	६५३	काशी दास जी	भवानीपुर राजधाम
४७०	ज्ञानचन्द्र महतो	मौवाजितपुर	६५८	महावीर प्र० मंडल शिक्षक	,, ,,
४७६	विष्णु दास	आभो कोपा	६७५	टूरे दास जी	मेरी गंज
४८२	पंचानन्द दास	सत्संग मंदिर गोडा	६७६	सुरत लाल दासजी	श्रीनगर
४६२	अनन्त कुमार मंत्री सरस्वती दास	साहबगंज	६८७	नवाव लाल यादव	खौजरीहाट
४९९	सत्य नारायण साह	बरेटा	६६०	भूवनेश्वर दास महतो	अभिया बाजार
५२०	दशरथ मंडल	पलासी	६६४	सुखदेव दास	घोरघट
५३१	पहलु साह	भवानीपुर राजधाम	६६७	शंकर दास	डाढ़ै
५६८	पार्वती देवी आध्यापिका	कटिहार	७०४	काली प्रसाद साह	गोलपारा
५६३	उचित लाल सिंह	भौवाड्योढ़ी	७०७	महन्थ ठाकुर	काझा
५६७	रामखेलावन दास	कहलगाँव	७१०	त्रिवेणी दास आदित्य प्र०	नवावगंज
५७०	छेदी साह पी० बी० साह	बागनगर	७१३	भुटाई साह	पलासी
५७२	मथुरी साह शम्भू दयाल जी	जलालगढ़	७१४	राजेन्द्र प्र० जयसवाल	अयोध्यागंज बाजार
५७६	महावीर प्रसाद	माटीगरहा	७१६	गुनलाल दास	बलुआकलियागंज
५६१	हीरा दास जो काशी दासजी	खगड़िया	७२०	महेशलाल साह	पलासी
५६८	योगेन्द्र मंडल	महेशपुर	७२७	गिरधारी प्र० सिंह	सोन्डीहा
६०४	हीरा प्रसाद सिंह	कोढ़ा	७३६	सत्तन शर्मा	परबत्ता
६०५	अखिलेश्वर प्रसाद दास	पसराहा मुस्कीपुर	७३३	अन्तराभ रामदेव	पीरपैंती बाजार
६०६	विहारी महतो	प्रताप गढ़	७३४	रामधीन पोद्दार	धुरिया कलासन
६०६	बाँके राय	खरीक बाजार	७३७	वृजलाल दास	धुरिया कलासन
६१०	मदनेश्वर प्रसाद आर्टिस्ट	सहरसा	७३९	डोमन दास	महादेवपुर
६११	चन्द्र नारायण यादव	चौपड़ा रामनगर	७४०	दुखहरण मंडल	धुरिया कलासन

७५४	काशी साह	अकबरपुर
७६०	बंगाली दास टी०न० ३३६५	जमालपुर
७६३	डा० राघोशरण सिंह	घोघा
७६७	रसिकलाल सिंह	तरसुआ बड़गांव
७७०	बलदेव ऋषि	गुरुबाजार
७६०	साधुशरण दास	नौगछिया
७६६	महादेव दास नाई	शाह आलम नगर
८०५	श्रीदेव यादव	राउताड़ा
८०६	सामर्थी सिंह	अभिया बाजार
८१९	महावीर यादव	भटगामा
८२०	बटेश्वर यादव	भटगामा
८२१	कीरो यादव	भटगामा
८२६	चतुरी दास	विष्णुपुर ड्योढ़ी
८२८	बलवन्त सिंह श्याम सिंह	सासाराम
८३०	बिशुनलाल सिंह मुन्नीलाल सिंह	सासाराम
८३५	बोधी दास	रामपुर तिलक
८५०	झौरी राम रघुनन्दन राम	सासाराम
८५५	अनन्तलाल महतो	ग्वालपाड़ा
८५७	रामकुण्ड मंडल	बभनगामा
८७४	ब्रह्मदेव शर्मा	शाहआलम नगर
८७५	गेंदा शर्मा	शाहआलम नगर
८८३	सहदेव साह सीता राम	मुरली गंज
८६१	दरबारी राम	भागलपुर सीटी
६००	योगी दास	अमारी विशनपुर
६०१	स्वामी पुर्णानन्द जी	जोकी हाट
६०२	जटायु दास	जोकी हाट
६२१	सुगान साह	मैना नगर
९२६	चुल्हाय साह नवरंगी साह	सरसी
६४७	श्रवण कुमार चौधरी	विसनपुर
६४८	सरजुन प्रसाद मंडल	मोतियाडमरिया

९५१	भागवत पंडित	सुखियाबढ़ैत
६५७	डोमन मोदी	भागलपुर
६६०	महन्थ सीताराम दास	चैनपुर
६६६	रामेश्वर चौधरी	दौलतपुर
६७३	वृजनन्दन सिंह हेड कर्ल्क माइनर इरीगेशन	भसुवा
६७७	तहसील दार दास	नवादा बजार
६८०	पलटु साव सीताराम हरीलाल	बिहारी गंज
६८५	सर्वेयर बाबू	मुंगेर डनटा
६८७	अक्षय मंण्डल	कोटा
६६६	बनारसी दास	एकचारी
१००६	शुकदेव प्रसाद यादव	सिमरवन्नी
१००८	विरंची मंडल	भंगहा
१०११	हरि प्रसाद भगत	कटिहार
१०१४	राम प्रसाद साह	गनेशपुर
१०१६	लक्ष्मण दास	राघोपुर
१०२८	सौखी दास	सधवा
१०३२	श्रीधर दास	डुमरी डयोढ़ी
१०३३	हरि दास	बिन्दादियरा
१०३७	अजबलाल शर्मा	तरसु आवड़ गाँव
१०३६	सहदेव महतों	बाहा चौकी
१०४२	मिश्री मंडल	भवानीपुर राजधाम
१०४६	राम वृक्ष प्रसाद गुप्ता	पोठिया
१०४८	नोखे लाल पण्डित	नौ गछिया
१०४६	विश्वनाथ प्र० जायसवाल	ढोलबज्जाबजार
१०५०	कामेश्वर दास हेड पं० लो० प्रा० स्कूल खैरपुर	हकीददपुर नवादा
१०६५	बिहारी महतो	दौलतपुर
१०६६	भनुलाल दास	[illegible]
१०७१	टुनाय शर्मा	ढोल बज्जा बजार

१०७८	नेपती विश्वास	पलासी
१०७९	चतुरी प्रसाद गुप्त	तामगंज
१०८७	रुद्र नारायण दास	नौगछिया
१०८८	राम प्रसाद सिंह आयुर्वेदिक दवाखाना	गढ़ बनैली
१०९७	श्री कारे लाल विश्वास	श्रीनगर
१०९८	श्री कृष्णलाल मंडल	बाग नगर
११०२	नन्दलाल साह	पथरघट
११०५	नरसिंह प्रसाद दास	असाडी माधुरी
११०६	शुकदेव मंडल अ० प्रा० स्कूल	महादेव पुर
११०९	जगदीश प्रसाद भगत	चोपड़ा राम नगर
१११३	हरिहर दास जोकी दास	बन्देवार
१११६	मोहन लाल अग्रवाल C/o बैजनाथ महाबीर प्रसाद	अररिया R. S.
१११७	गोपी चन्द अग्रवाल	काढ़ा गोला
११२०	मेघू दास	फारबिश गंज
११२३	साहब नथन दास	जगदीशपुर हाट
११३२	सदानन्द कुमर	खरीक बाजार
११३६	दुःखी प्रसाद विश्वास	सनौली
११३९	भगवान भगत	कटिहार
११४०	श्रीमति समरिया देवी C/o राधे प्रसाद साह	अररिया
११४४	महाबीर साह फेकू साह गल्ला मर्चेन्ट	सूजागंज
११४७	गोविन्द लाल दास	मदनपुर
११४८	जगदीश दास	खुरहान मिलीक
११५०	अकल दास	खरीक
११५१	छट्टू मंडल मनिक मंडल	बिन्दादियारी
११५४	झंगुरी दास बाबू राघो सिंह	सरसीबाड़ी
११५८	भूधर दास	तिनटंगादियारा

११६२	राजू साह	टीकापट्टी
११६३	रामकृष्णदास डालमिया	नई दिल्ली
११६६	रामलाल प्रसाद	श्रीनगर
११६७	यदुनन्दन प्रसाद	लाभामहादेवपुर
११६८	सत्यनारायण प्रसाद राय	फुलौत
११७०	रमकलाल विश्वास यादव	डेहटी
११७४	रामपुकार सिंह मास्टर	सिंगिजा
११७५	सीताराम दास	खड़ाबुधुमा
११७८	श्यामसुन्दर झा	ढ़ोलबज्जा बाजार
११८६	मुंगालाल शर्मा	महाथवा बाजार
११८९	रतिलाल मंडल	थिरानीगंज
११९०	रामकृष्ण साहु	कैरिया
११९१	डा० हरिदास	बन्देवार
११९४	तनुकलाल मंडल	अरजपुर
११९६	विष्णुदेव मंडल	भेरीगंज
११९८	भुवनेश्वर दास	बरहरा
११९९	बंशी भगत	सुकठिया
१२१०	वशिष्ट प्रसाद सिंह	शाहकुंड
१२११	कालूराम साह	बलुआ कलियागंज
१२१७	ब्रह्मदेव प्रसाद	कलकत्ता
१२१९	अखिलेश्वर झा	लखपुरा
१२२३	मथुरी दास जगरूप दास	बेलदौर
१२२४	जीवछलाल ए० एस० आई०	बागमारा
१२३०	वैजनाथ शर्राफ 'साहित्य रत्न'	बाखगंज
१२३३	गुलाबलाल मंडल	सिंहनान
१२३४	लक्ष्मी देवी (अनूपलाल दास)	सिकटी
१२३६	शिवनारायण जी नन्दकिशोर	दिनाजपुर
१२३८	गनपत राम दीना राम	गणेशपुर पुरैनी
१२४०	श्री जनता पुस्तकालय	चोपड़ा रामनगर
१२६२	नन्दकिशोर चौधरी	डिहरी

१२६३ जमुना प्रसाद मोहनलाल	डिहरी	१२८५ राजू साह	जगदीशपुर
१२६५ रामरतनराम शिवशंकर प्रसाद शर्राफ	डिहरी	१२६१ नागेश्वर दास	पीरनगर ड्योढ़ी
१२६६ प्रधानाध्यापक आर०के०सी०एच०स्कूल	बरौनी	१२६६ रामअधार सिंह	सासाराम
१२६७ सुन्दर दास	महेशपुर	१३०० प्रधानाध्यापक मि०ई०स्कूल लगमा	जहाँगीरपुर
१२६८ भनेश्वर दास	श्रीनगर	१३०४ शम्भूदयाल मौर्य	महोना
१२७५ बैजू दरवे	सोन्डीहा बभनगामा	१३०७ हरप्रसाद रामचरणलाल	बदायूँ
१२७६ सुखलाल प्र० सिंह	धौरैया	१३०८ राजेन्द्र प्रसाद चौधरी	सिमरा
१२७७ सोनू दास	विश्वासखानी	१३०६ अकलू साह बाबूचन्द	बेगमपुर
१२७८ जगदेव दास	नवादा बाजार	१३१० रामप्रसाद वंशीलाल	बेगमपुर
१२८२ बटेश्वर प्रसाद सिंह	सुलतानपुर	१३११ रघु साह रामू साह	बेगमपुर
१२८३ देशीदास श्री मोहनदास	धौरैया		

(पृष्ठ ४३ का शेषांश)

पुरुषों का समागम करते हुए भी अधिक काल तक ज्ञान नहीं होता, यदि किसी की बुद्धि तीव्र है, परन्तु सद्गुरु के प्रति शुद्ध श्रद्धा नहीं है, तो भी यथार्थ ज्ञान नहीं होता। श्रद्धा के अभाव में अपनी सीमित जानकारी का अभिमान, ज्ञान के उच्च सोपानों में नहीं बढ़ने देता। शुद्ध ज्ञान के लिये ज्ञानी के प्रति श्रद्धा और तीव्र बुद्धि दोनों का होना अत्यावश्यक है। इस प्रकार की श्रद्धा तथा तीव्र बुद्धि का साधन संत-महात्माओं का सत् संग है, संग के अनुसार ही बुद्धि बनती है और बुद्धि के अनुसार ही न्युनाधिक ज्ञान होता है।

मनुष्य को अपने अपने जन्म के साथ ही किसी न किसी तरह का संग अवश्य मिलता है। जिस प्रकार के भाव, विचार और भाषा-भूषा वाले लोगों का संग सुलभ रहता है, उसी प्रकार के भाव, विचार, भाषा-भूषा आदि का अभ्यास मनुष्यों में दृढ़ हो जाता है। यदि किसी को जन्म लेने के साथ ही यथार्थदर्शी ज्ञानी महात्माओं का संग सुलभ हो जाता है, तो निःसन्देह उसकी बुद्धि में उन्हीं ज्ञानी पुरुषों का प्रभाव पड़ता रहता है। यह भी समझ लेना आवश्यक है कि संग का आशय शरीर-मात्र की समीपता से ही नहीं है, अपितु शरीर के साथ इन्द्रिय, मन और बुद्धि के संयोग से हैं; क्योंकि किसी का शरीर कदाचित् ज्ञानी पुरुषों के समीप रहने लगे और मन बुद्धि किसी अज्ञानी प्रपञ्चोपासक व्यक्ति में लगी रहे तो उसके मन बुद्धि पर प्रपंची का ही प्रभाव पड़ेगा। जिस में मन लगा रहता है, जिसमें बुद्धि स्थिर होती है, उसी का प्रभाव पड़ता है, उसी का ज्ञान होता है, इसीलिए ज्ञानी संत-महात्माओं का मनोयोगपूर्वक बुद्धि से संग होना चाहिये। ऐसा होने पर ही ज्ञानी पुरुषों की कृपा से बुद्धि सूक्ष्मातिसूक्ष्म होती जाती है और गुरुदेव के प्रति श्रद्धा भी शुद्ध और स्थिर होती जाती है। ●

सन्त साधना का सांगोपाङ्ग वर्णन
के
— लिये पढ़िये —

सत्सङ्ग योग (चारो भाग)

ले०—स्वामी मेंहीं दास जी

सन्तों ने ईश्वर प्राप्ति के लिए नाद तथा विन्दु साधनाओं का उपदेश किया है। इन दोनों साधना का विस्तृत विवेचन सत्सङ्ग योग में किया गया है। श्री स्वामी मेंहीं दास जी लगभग ४५ वर्ष से नाद तथा बिन्दु की साधना कर रहे हैं। सत्सङ्ग योग के चौथे भाग में उन्होंने अपना अनुभव लिखा है। पहले तीन भागों में वेद, उपनिषद, तन्त्र ग्रन्थों, महाभारत, पुराणों, सन्तों- बुद्धदेव, शंकराचार्य, गोरखनाथ, कबीर, धर्मदास, नानक दास, चरण दास, दरिया साहब, केशवदास, धरनी दास, जगजीवन साहब, पलटू साहब, गरीब साहब, सुन्दर दास, तुलसी दास, सूरदास, राधास्वामी आदि के वचन का संग्रह किया गया है। इनके वचन से ईश्वर का स्वरूप तथा उनकी प्राप्ति तथा मोक्ष का उत्तम ज्ञान होता है। भक्ति और मुक्ति के साधन में सत्संग, गुरु-सेवा, ईश्वर-प्रेम, सदाचार, हृदय की शुद्धि, जप और ध्यान आदि का भी ज्ञान हो जाता है। साधकों के लिये यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। इसका मूल्य पाँच रुपये है। डाक खर्च मूल्य से अतिरिक्त लगेगाः—

मिलने का पताः—
श्री महावीर दास
श्री सन्तमत सत्संग मन्दिर
पो॰ आ॰ मनिहारी (पूर्णियां)

मन और तन स्वस्थ्य करनेवाली पुस्तकें

(१) विनय पत्रिका सार सटीक
—ले० स्वामी मेंहीं दास जी मूल्य ।।)

(२) सन्तमत सिद्धान्त और गुरु कीर्तन
—ले० स्वामी मेंही दास जी की मूल्य ।≈)

(३) ईश्वर का स्वरुप और उसकी प्राप्ति
—ले० स्वामी मेंही दास जी मूल्य ≡)

(४) आर्थिक सफलता
—ले० रामचरण महेन्द्र एम० ए० मूल्य १।।)

(५) प्रभावशाली जीवन
—ले० रामचरण महेन्द्र एम० ए० मूल्य १।।)

(६) प्राकृतिक चिकित्सा
—ले० श्री विश्वामित्र बर्मा मूल्य १।।)

(७) पौरुष और काया कल्प
—ले० श्री विश्वामित्र वर्मा मूल्य २)

(८) दिव्य सम्पत्ति
—ले० विश्वामित्र वर्मा मूल्य ।।)

(९) राम कथा
—ले० पं० रामदास मिश्र विजय मूल्य १)

संख्या ३ से लेकर संख्या ९ तक की पुस्तकों में शान्ति सन्देश के ग्राहकों को रुपया में चार आना कमीशन दिया जायगा।

डाक खर्च अलग से लगेगा।

सम्पादक 'शान्ति-सन्देश'
पो० औ० खगड़िया
(मुंगेर)

श्री मेंहीं दास जी के दो अनमोल पुस्तकें !

(१)

दास वचनामृत

स्वामी मेंहीं दास जी के २६ प्रवचनों का प्रथम पुस्तकाकार संग्रह। इसे पढ़कर आपको २६ सत्सङ्गों का आनन्द आवेगा। इस पुस्तक के द्वारा घर बैठे सत्सङ्ग का लाभ उठाइये। मूल्य २॥) शान्ति-सन्देश के ग्राहकों तथा सत्सङ्गियों को २।) में दिया जायगा। डाक खर्च रजिष्ट्री से ।॥=) आने मात्र।

(२)

मेंहीं पदावली

स्वामी मेंहीं दास जी के १३९ पदों का संग्रह। इसमें अब तक स्वामी जी ने जितने पद बनाये थे सब एकत्रित करके प्रकाशित किये गये हैं। इसमें छः विभाग हैं। (१) ईश-स्तुति (२) सन्त स्तुति (३) गुरु कीर्त्तन (४) ध्यानाभ्यास (५) सन्तमत की बातें (६) आरती। इसका मूल्य १=) है। शान्ति-सन्देश के ग्राहकों तथा सत्सङ्गियों को १) में दिया जायगा। डाक खर्च रजिष्ट्री से ॥) आने मात्र।

सत्सङ्गियों को दोनों पुस्तकों की एक-एक प्रति अवश्य खरीदनी चाहिये। दोनों पुस्तकों को एक साथ मंगाने पर डाकखर्च रजिष्ट्री द्वारा ।॥) लगेगा। इसलिये दोनों पुस्तकों को मंगाने के लिये ४) मनिआर्डर से भेज देना चाहिये। वी०पी० से मंगवाने पर अधिक खर्च लगेगा। आस पास के रहने वाले सत्सङ्गीगण एक साथ बहुत सी प्रतियाँ मंगाकर आपस में बाँट ले। इससे डाक खर्च की बचत होगी। कितनी भी पुस्तकें एक साथ मंगा ली जाय रजिष्ट्री खर्च ।=) आना लगेगा। अलग से एक प्रति वचनामृत का डाकखर्च चार आना तथा एक प्रति पदावली का डाकखर्च =) आना है। इस तरह जितनी प्रति पुस्तक की मंगानी हो उसका मूल्य तथा डाकखर्च तथा रजिष्ट्री खर्च ।=) सब जोड़ कर मनिआर्डर से भेजना चाहिये।

सम्पादक—'शान्ति-सन्देश'
पो०ऑ० खगड़िया, मुंगेर।

"दि ओरिएन्ट प्रिंटिंग वर्क्स जमालपुर से मुद्रित तथा डा० रामप्रसाद वैद्य भूषण
उप-सभापति, अखिल भारतीय-सन्तमत सत्सङ्ग द्वारा प्रकाशित।